श्री क़ुरानामृत

भाग १

श्री क़ुरान परिचय

प्रकाशक :

मु० अब्दुल् हयी,

प्रधान मंत्री—सेन्ट्रल जमईय्यते-तब्लीगुल् इस्लाम, कानपुर।

UNIVERSAL BROTHERHOOD AND ISLAM

I am very grateful to my esteemed friend Janab Mohammad Abdul Hai, Secretary, Jamaitul Tablig, Indian Union, Kanpur, for having given me a copy of the Hindi edition of the book, Rahamat-Ullil Almin-the life of the holy prophet - Mohammad the Benevolent. This is a valuable book and every Indian - may he belong to any caste or creed, should read it with careful attention.

The world today is trying to come out of narrow and small groupings and everyone is feeling the necessity of realising that he belongs to one big family comprising of all human beings of the earth and this book, I am sure, will be a source of hope and consolation to everyone who reads it. The prophet had realised this sublime truth of one brotherhood of human beings about 1400 years ago and had devoted almost the whole of his life in preaching it. The history of his life is a beautiful story of the practical demonstration of his belief by every word and deed. He did not hate or punish anyone and was never seen to be angry or impatient with anybody, for to him, every person, howsoever erring or misguided was a brother.

The tenets of Islam as enunciated by the Prophet were very simple and were meant to make human beings better and to form an universal brotherhood. His approach to people was through love and reasoning and not through force or violence. He believed that the root of all evils in this world was based on human greed and selfishness and for personal gains people used to rob, cheat and kill their brethren and took recourse to several superstitious rites and had created their own gods who were supposed to give them protection and special powers to succeed in their nefarious activitities. He therefore took a definitely strong attitude against all such evil customs and advised his fellow men to lead a simple life and have faith in one all affectionate and benign god and to consider everyone as their own blood brother. Wrong doers who had numerous followings and great powers, got infuriated with him, on account of his preaching, as it was undermining their influence and prestige, and started persecuting him in every way but could not divert him from his pious mission and the prophet calmly and cheerfully submitted to all the personal injuries and indignities showered on him so shamefully and mercilessly. Having thus failed in their efforts to stop the prophet's activities by personal threats and violence the wicked people commenced to maltreat and attack his followers. Mohammed showed a wonderful

भूमिका

संसार में जितना विरोध इस्लाम का हुआ सम्भवतः किसी धर्म का नहीं हुआ। जितना भ्रम इस्लाम के मूल ग्रन्थ .कुरान के विषय में फैलाया गया किसी धर्मग्रन्थ के विषय में नहीं फैलाया गया। और जितने निराधार आरोप इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मोहम्मद पर लगाये गये किसी धर्म संस्थापक पर नहीं लगाये गये। ऐसा क्यों हुआ और क्यों किया गया ? इसके छोटे बड़े अनेक कारण हैं, किन्तु एक कारण जो सब से बड़ा और सब में शामिल है वह यह है कि जिन लोगों ने ऐसा किया वह इसके बिना अपनी राजनैतिक मर्यादा तथा धार्मिक प्रतिष्ठा को सुरक्षित नहीं रख सकते थे।

इस्लाम कोई नई चीज़ लेकर नहीं आया। उसका कहना यही है कि मैं जिस राह की ओर बुलाता हूँ, वह कोई नई राह नहीं है और न सचाई की राह नई हो सकती है। यह वह ईश्वरीय मार्ग है जो सनातन से मौजूद है और जितने धर्म-प्रवर्तक हो गुज़रे हैं सबने इसी मार्ग की ओर बुलाया है। एक के बाद एक सब ने यही शिक्षा दी कि परमात्मा की उपासना करो और सदाचार का जीवन बिताओ। उसने यह भी बताया कि परमात्मा की सचाई उसकी सारी बातों की तरह उसकी विश्वव्यापी देन है, और जिस तरह ईश्वर ने असंख्य चीज़ें प्रदान करने में वंश, जाति, देश और काल का कोई भेद नहीं रखा उसी तरह ईश्वरीय पथ-प्रदर्शन अर्थात् धर्म को भी सब प्रकार के भेद भाव और पक्षपात से पृथक रखा है।

परन्तु लोगों ने यह शिक्षा भुला दी। मानव जाति की एकता का सूत्र टुकड़े टुकड़े कर दिया। वेष, रंग, वंश, जाति तथा देश के नाम पर अलग अलग हो गये। एक दूसरे से हाथा पाई करने लगे। परस्पर घृणा और द्वेष से काम लेने लगे। धीरे धीरे ऐसे जत्थे और दल बना लिये गये जो एक दूसरे से पृथक थे, फिर उनमें ऐसे भाव पैदा कर दिये गये जिससे लोग असली धर्म अर्थात् ईश्वरोपासना और सदाचरण को छोड़ कर अपने दल विशेष की पूजा करने लगे और अपने बनाये हुये विधि-विधान ही को ध्येय मान बैठे।

इस्लाम का कहना था कि मनुष्य का कल्याण और मुक्ति उसके विश्वास और उसके कर्मों पर निर्भर है। किन्तु लोगों ने इसके विरुद्ध अपनी अपनी पैतृक और साम्प्रदायिक गिरोह बन्दी के दायरे बना लिये और घोषणा की कि जो इस दायरे के अन्दर है वह सत्य पर है, और उसी के लिये मुक्ति भी है। जो इसके बाहर है वह असत्य पर है, और उसे कभी मुक्ति नहीं मिल सकती।

संसार के जिन सम्प्रदायों से इस्लाम को सब से पहले सामना करना पड़ा वह यहूदी और ईसाई थे। इन दोनों ने अपनी अपनी पैतृक और साम्प्रदायिक टोलियाँ बना ली थीं

और कहते थे कि जो हमारी साम्प्रदायिक टोली में शामिल नहीं है उसका सत्य में कोई हिस्सा नहीं और न वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है। चाहे कोई व्यक्ति कितना ही ईश्वरनिष्ठ और सदाचारी क्यों न हो पर यदि वह यहूदियों अथवा ईसाइयों के अपने साम्प्रदायिक घेरों में दाखिल नहीं है तो वे उसे सुपथगामी नहीं मान सकते। इस्लाम ने उनके इस झूठे गुमान का खण्डन किया। उसने उनसे पूछा कि यह बात तुम्हें कहाँ से मालूम हुई कि यहूदी अथवा ईसाई सम्प्रदाय का प्रत्येक व्यक्ति मुक्ति प्राप्त है और उसे परलोक की यन्त्रणा से छुटकारा मिल चुका है ? क्या तुम्हें परमात्मा ने बिना शर्त के मुक्ति का पट्टा लिख दिया है ?

इस्लाम ने यहूदियों और ईसाइयों के धर्म ग्रन्थ इंजील तथा तौरात को ईश्वरीय ग्रन्थ माना और हज़रत ईसा और हज़रत मूसा दोनों को परमात्मा का सच्चा पैग़म्बर स्वीकार किया। परन्तु इसी के साथ उपरोक्त थोथे विश्वासों को यहूदी और ईसाई प्रोहितों और पंडितों के अपने गढ़े हुये विश्वास बतलाये। इस प्रकार इन प्रोहितों और पंडितों का पोल खुल गया। उनकी महात्माई धूल में मिल गई। उनके धर्म आडम्बर छिन्न भिन्न होकर रह गये। उनकी गद्दियाँ डगमगाने लगीं। उनकी राजनैतिक मर्यादा और धार्मिक प्रतिष्ठा का भवन धराशायी हो गया। खाने कमाने और सुख विलास का अधिकार नष्ट हो गया और इस कारण अनिवार्य था कि वह इस्लाम के शत्रु बन जायें और उसके विरुद्ध प्रचार करने में कोई कोर कसर उठा न रखें।

ऐसा ही किया गया। एक ओर उनकी तलवारें मुसलमानों के सिरों पर चलने लगीं तो दूसरी ओर उनकी लेखनी इस्लाम की गर्दन पर वार करने लगी।

इस्लाम के खिलाफ़ यह प्रचार इतना हुआ कि यूरोप का सम्पूर्ण वातावरण इस झूठे प्रचार से भर गया।

जब यूरोप का ईसाई साम्राज्य भारत में आया तो राजनैतिक अस्त्र शस्त्र के साथ वह प्रचार भी अपने साथ लेता आया जो धार्मिक ईर्षा द्वेष के कारण यूरोप में शताब्दियों से इस्लाम के खिलाफ़ किया जा रहा था। मुसलमान भारत में आकर अवश्य लड़े और उन्होंने यहाँ लगभग ९०० वर्ष तक राज्य किया किन्तु उनका युद्ध और उनका राज्य दोनों ही इस्लाम के लिये नहीं थे और न उनमें इस्लाम के उच्च आदर्शों का पता चलता है। लड़ने और राज्य करने वाले मुसलमानों ने यदि कहीं इस्लाम का लेबिल लगाया है तो वह उनका राजनैतिक स्वार्थ था, इस्लाम से उसका वास्तविक सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इस्लाम विरोधी प्रचार के निमित्त ईसाई साम्राज्य के लिये यह चीजें बड़ी कीमती थीं। लड़ने और राज्य करने वाले मुसलमानों के खिलाफ़ कुछ न कुछ द्वेष-भाव पहले से मौजूद ही था। अतः इस इस्लाम विरोधी प्रचार का स्वागत हुआ और बहुत से भारतवासी इस्लाम को उन्हीं आँखों से देखने लगे जिनसे उन्हें वह दिखाया गया था।

हम इसका दोष ईसाई, यहूदी धर्म अथवा यूरोपियन साम्राज्य के इस्लाम विरोधी प्रचारकों पर रखना नहीं चाहते, उनके निज स्वार्थ की माँग यही थी। इसी प्रकार इस इस्लाम विरोधी प्रचार से प्रभावित होने में कोई दोष हमारे देशवासी भाइयों का भी नहीं है, क्योंकि वे इस्लाम की वास्तविक जानकारी न होने ही के कारण प्रभावित हुये। यदि उन्हें इस्लाम के दिव्य और हृदय-आकर्षक जीवन का दिग्दर्शन हो चुका होता, और यदि उन्हें इस्लाम की मौलिक शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त हो गया होता तो वह इस झूठे प्रचार से कभी इतना प्रभावित न होते। सत्य का खोज करने वाले जिन विवेकशील विद्वानों ने इस सत्य पथ का अध्ययन तथा अनुशीलन किया है उनके सामने से इस झूठे प्रचार के आवरण हट गये हैं। इन सत्य प्रेमी विद्वानों में भारत देश के प्राण महात्मा गाँधी का स्थान बहुत ऊँचा है। इस्लाम का ज्ञान प्राप्त करने और उसकी दिव्य रूप रेखा का दिग्दर्शन करने के बाद आप लिखते हैं :—

"इस्लाम अपने अति विशाल युग में भी अनुदार नहीं था बल्कि सारा संसार उसकी प्रशंसा कर रहा था। उस समय जब कि पूर्वीय क्षितिज का एक उज्ज्वल सितारा चमका जिससे विकल संसार को प्रकाश तथा शांति प्राप्त हुई। इस्लाम झूठा मज़हब नहीं है। हिन्दुओं को भी इसका अध्ययन करना चाहिए, जिस तरह मैंने किया है, फिर वह भी मेरे ही समान इससे प्रेम करने लगेंगे।

मैं पैग़म्बर-इस्लाम की जीवनी का अध्ययन कर रहा था। जब मैंने किताब (सीरतुन्नबी) का दूसरा भाग भी पढ़ लिया तो मुझे दुःख हुआ कि इस महान प्रतिभाशील जीवन का अध्ययन करने के लिये अब मेरे पास कोई और किताब बाकी नहीं है। अब मुझे पहले से अधिक विश्वास हो गया है कि यह तलवार की शक्ति न थी जिसने इस्लाम के लिये विश्वक्षेत्र में विजय प्राप्त की बल्कि यह इस्लाम के पैग़म्बर का अत्यन्त सादा जीवन, निःस्वार्थ प्रतिज्ञा-पालन और निर्भयता थी, आपका अपने मित्रों और अपने अनुयाइयों से प्रेम करना और ईश्वर पर भरोसा रखना था। यही वे गुण थे जिससे सारी बाधाएँ दूर हो गईं और हज़रत मोहम्मद ने समस्त कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर ली।"

महात्मा जी के यह पवित्र विचार इस्लाम के समोचित अध्ययन तथा वास्तविक जानकारी का फल है। यदि इस जानकारी के साधन और सुविधाएँ हमारे देश भाइयों को भी प्राप्त हो जाएँ तो इस्लाम विरोधी प्रचार का खोखलापन आप से आप स्पष्ट हो जाए और इस्लाम की दिव्य ज्योतियाँ प्रस्फुटित होकर उनके हृदयों को भी प्रकाश प्रदान कर सकें।

किन्तु बड़े ही दुःख की बात है कि इस सम्बन्ध में हमारे प्रयत्न नहीं के बराबर हैं। इस्लाम की जानकारी के लिये सबसे बड़ा साधन "व्यवहारिक जीवन" है सो हमारा व्यवहारिक जीवन इस्लाम के आदर्शों और वास्तविक शिक्षाओं से इतना दूर जा पड़ा है कि नाम

के सिवा कोई लगाव बाक़ी नहीं रहा। अब रहा साहित्य द्वारा इस्लाम की जानकारी कराना तो अन्य इस्लामी साहित्य की बात कौन कहे, भारतीय भाषाओं में इस्लाम के मूल ग्रन्थ ".क़ुरान" के अनुवाद उंग्लियों पर गिने जा सकते हैं। उर्दू फ़ार्सी के अनुवादों को छोड़कर एक अनुवाद बंगला में पादरी गोल्ड सेक ने किया है। हकीम सूफ़ी मीर मोहम्मद याक़ूब ने मराठी भाषा में अनुवाद किया। दो अनुवाद टेलगू में हुये एक श्री नारायण राव एम० ए० एल० टी० टेलगू व संस्कृत लेक्चरर गवर्नमेन्ट आर्ट्स कालेज गोदावरी ने और दूसरा मद्रास निवासी मरहठा विद्वान श्री विंकटा ने किया। एक अनुवाद मलायालम भाषा में "सद्गुरु" के सम्पादक श्री एस० एन० कृष्णम राव बी० ए० ने किया है।

हिन्दी भाषा में तीन अनुवाद हमारी नज़र से गुज़रे है। इन में से एक श्री पण्डित रघुनाथ प्रसाद मिश्र (इटावा) आर्य उपदेशक ने, दूसरा पादरी अहमद शाह ईसाई मिश्नरी ने किया है और तीसरा ख़्वाजा हसन निज़ामी ने कराया है। पादरी अहमद शाह ने निज धर्म प्रचार के हेतु भ्रमयुक्त टीका-टिप्पणी की है और पंडित जी ने ऐसी ही टिप्पणियों के अतिरिक्त द्वेषपूर्ण भूमिका लिखी है। उपरोक्त अनुवादों से इन दोनों का उद्देश इस्लाम विरोधी प्रचार है।

उपरोक्त असत्य प्रचार के आवरण तथा उसके द्वारा पाये व फैलाये जाने वाले भ्रमात्मक विचारों को दूर करने और इस्लाम के वास्तविक स्वरूप को दर्शाने के हेतु श्री सेन्ट्रल जमइय्यते तब्लीग़ुल् इस्लाम, कानपुर ने कुछ समय पूर्व इस्लाम के मूल ग्रन्थ श्री .क़ुरान का नागरी भाषा में टीका सहित अनुवाद "श्री .क़ुरानामृत" नाम से कराने व प्रकाशित करने का कार्य अपने हाथ में लिया।

मूल .क़ुरान का सटीक हिन्दी अनुवाद "श्री .क़ुरानामृत" उपस्थित करने से पूर्व आवश्यकता थी कि पहले श्री .क़ुरान का संक्षिप्त परिचय करा दिया जाये। अतः श्री .क़ुरानामृत का यह प्रथम भाग 'श्री .क़ुरान परिचय' प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है कि हिन्दी भाषा भाषी इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन कर यथोचित लाभ उठायेंगे।

मु० अब्दुल् हय्यी

"७८६"

पाहिला पुष्प

श्री क़ुरान

तथा

उसका संक्षिप्त प्रचार परिचय

पहिली पंखड़ी

दिव्य वाणी

निवेदन— पाठक वृन्द! अब जिस "क़ुरानामृत" को हम आपके सम्मुख उपस्थित करना चाहते हैं उसके मूल श्री क़ुरान का संक्षिप्त प्रचार परिचय आप यहां अवलोकन करें। इससे आपको उसके भारत पर्यन्त प्रचारित होने का योग्य ज्ञान होगा। तथा उसके प्रेरक, प्रचारक, एवं उनके निःस्वार्थ, परोपकार युक्त, अनुकरणीय महात्माओं का भी सूक्ष्म परिचय होगा। आशा है आप इन कतिपय पंक्तियों से मनन पूर्वक लाभ उठावेंगे।

सज्जन गण! यह क़ुरान मुस्लिम वृत्ति मनुष्य का अद्भुत कल्याण कारक तथा उनकी स्थाई मोक्ष का साधन मात्र है। इस धर्म ग्रन्थ की रक्षा एवं प्रचार प्रत्येक आस्तिक का परम कर्तव्य है। यह अमूल्य रत्न श्री अरबी भाषा में प्रेरित हुआ है। इसके गुणानुसार इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये उतनी ही थोड़ी है। कारण कि यह उपस्थित धार्मिक जगत का सुनिश्चित सुधारक तथा उस का अन्तिम सुपथ प्रदर्शक है। इस की अपूर्व अलौकिकता इसीसे प्रकट है कि यह श्री श्रुति सागर, सौम्य वाणियों के प्रमुख केन्द्र, आनन्द. कन्द, श्री अखण्ड ब्रह्म की "दिव्य वाणी" है।

दूसरी पंखड़ी
सुलक्षणा प्रदान

इस आमोद प्रमोद युक्ता सुलक्षणा को उस प्रभु ने अपनी अपूर्व कृपा से सार्व भौम कल्याण के निमित्त अपने भक्त शिरोमणि श्री मुहम्मद महोदय को स्वयं प्रदान किया।

प्रदान प्रयोजन--ताकि वे महोदय इस सार-गर्भित, जगदीश प्रदत्त धर्माकर द्वारा संसार की परम्परागत अधार्मिक, निन्दनीय, कलुषित, अकरणीय कुरीतियों तथा उसकी गाढ़ अज्ञानता तथा विष पूर्ण रूढ़ियों का यथा शक्ति अवसान करके उन्हें शीघ्र ही अनादि इस्लाम का सुधा पथ दिखला सकें। एवं उसके धर्म्म दरिद्र पाप रूपी रोग वृत्तियों की चिकित्सा पूर्वक उन्हें इसके सर्वोत्तम आदेशोपदेश रूपी अविनाशी इस्लाम धर्म्म के अमूल्य रत्नों से धर्मधनी बनाकर अपने सदृश, आरोग्यता सम्पन्न अनन्य भक्त बनाने में सुसमर्थ हो सकें।

इस प्रकार उस शिष्टों के रक्षक महाप्रभु भगवान ने अपने भक्त तथा हमारे महाजन श्री मुहम्मद महोदय को यह अद्भुत सुधाकर कला अपने प्रेषणा के मर्यादित नियमानुसार विधिवत प्रदान करके हम आप समस्त कलियुग वासियों के निमित्त समान हित साधन रूप यह श्री क़ुरान प्रस्तुत कर दिया। जिसके विधि निषेधानुसार ही अब हम आप सबको प्रत्येक कार्य्य का संचालन व पालन करना योग्य है। न कि उसके विपरीत।
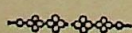
तीसरी पंखड़ी
भक्त शिरोमणि का प्रचारारम्भ

उस सर्वांग पूर्ण लोकोद्धारक श्री शान्त, दान्त सर्व शिष्टों के अद्वितीय आदरकारी भक्त शिरोमणि श्री मुहम्मद महोदय ने ऊपरयुक्त अलौकिका लोक सम्पन्न सम्पत्ति को सादर ग्रहणान्तर सब से प्रथम अपने प्रधान धर्माधिकारी प्रमुख हित नातों के सम्मुख उचित रूपसे प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् अपने अन्य आचारवान सुगण सहित उसका मक्क: नगर में एवं उसके उपरान्त मक्क: के आस पास उस सुकृति पुञ्ज श्री क़ुरान का सर्वसाधारण में श्रद्धा पूर्वक स्थिर प्रचार व विस्तार किया। इस से सम्प्रति अरब वासियों को यह ज्ञात होगया कि आप महाजन रूप से प्रकट हुए हैं। तथा श्री क़ुरान विधाता की ओर से आप पर प्रकट हुआ है। जो कि प्रत्येक आस्तिक के लिये अनुकरणीय है।

चौथी पंखड़ी
मौलिक प्रचार की व्यापकता

इसके पश्चात् कुछ आपस की विघ्न बाधाओं ने माथा उठाया जिनका शीघ्र ही दमन पूर्वक अवसान होगया। इसके उपरान्त श्री मुहम्मद महोदय के प्रमुख लग्नवान गणानुगण के मौलिक आचार सहित प्रचारों का ऐसा प्रभाव हुआ कि अरब वासियों ने उनके परम्परागत, अनर्गल, मिथ्या रूढ़ि आचार विचारों का साहस तथा सन्तोष पूर्वक स्वयं ही सुधार आरम्भ कर दिया। यथा— अविवेक युक्त निमू ल भेदों का मूलोच्छेदकरण, परोपकार सम्पन्न

मैत्री का अटल सञ्चार व प्रचार, अस्वाभाविक निर्मूल अत्याचारों का निष्कर्ष पूर्वक त्याग, आदर्श तपोधन पुरुषों का सत्संग, उनके आदर्श चरित्रों का अनुसरण, दैनिक कुरीतियों का यत्नतः त्याग तथा उनके स्थान में यथार्थ वन्दनाओं का दृढ़ता पूर्वक स्वीकार व उनका नम्रता पूर्वक स्थिर प्रचार, पंक्तिबधोपासनाओं का आदर्श अभ्यास तथा, उनकी मौलिकताओं का साहस पूर्वक विस्तार, प्रत्येक हानिकारक पाषाण पूजा से अपूर्व विमुखता, तथा उनके स्थानापन्न अद्वितीय ईश भक्ति तथा उसका अविचल रूप से अवलम्बन," इत्यादि नाना सुधार किये। इन नाना सुधारों के अनेक शुभ परिणामों को अब आप यहां पृथक पृथक अवलोकन कीजिये।

प्रथम परिणाम—इस शुभ सुधार का प्रथम सुफल सहित उत्तम परिणाम यह हुआ कि जो इस महोषध रूपा अमृतोत्पादिका श्री वाणी के पहले कट्टर विरोधी तथा उसके प्रमुख प्रचारक श्री शिरोमणि महाजन के पूर्ण शत्रु थे अन्ततः वे सब उसके प्राणान्त अनन्य भक्त तथा विधिवत मौलिक प्रचारकसिद्ध हुये।

द्वितीय परिणाम—द्वितीय लाभ यह हुआ कि जिस सजीवनी सुफला (ला इलाह इल्लल्लाहो) की प्राथमिक शिक्षा का नव्यारोपित वीज बड़ी कठिनता से आरोपण हुआ था उसे सम्प्रति यह शुभ अवसर प्राप्त होगया कि अब वह अपने मूलोच्छेदाभिलाषुक जन के समक्ष ही विना विलम्ब एक विशाल महा (शान्त इस्लाम रूप) तरुण वृक्ष का आकार धार अखिल प्रदेश के नर नारियों को चन्द्र कलावत अपने छत्र छाया में आच्छादित कर लेवे।

तृतीय परिणाम—तीसरा सार रूप सुलभ परिणाम यह हुआ कि सम्प्रति देश के प्रत्येक नर नारी को इसका पूर्ण विश्वास होगया कि श्री क़ुरान, उसके प्रतिपादक मूल "इस्लाम धर्म्म" दोनों के पोषक, आदि अन्त रहित श्री शाश्वत प्रभु, तीनों के अनन्य भक्त श्री शिरोमणि महाजन तथा उनकी विशेष रक्षासहित ये समस्त आदर भाजन हमारे भावी सौभाग्य के पुण्य विधायक अमूल्य रत्न हैं। इनकी यत्नतः रक्षा, सहायता तथा उनके आदेशानुसार आचरण करना यही हमारी पारलौकिक सम्पत्ति का मुख्य साधन होना चाहिये।

इन सुहित साधनों को छोड़ अन्य उपाय का चिन्तन यह सुनिश्चित हमारे भावी सौभाग्य का विध्वन्सक मात्र सिद्ध होगा अतएव अब हमें इनकी जीवन देकर भी पूर्ण सहायता करनी चाहिये। इत्यादि प्रौढ़ भाव उत्पन्न हो गये।

पाँचवीं पंखड़ी

अरबों की सर्व मान्यता का हेतु

यही कारण है कि अब सार्व भौम्य मुस्लिम वृत्ति जनता उनके प्रति अधिकाधिक्य सम्मान युक्त पूज्य भाव रखती है। उन के चरित्रों को आदर की दृष्टि से देखती है। उनका अनुकरण अपना सौभाग्य समझती है। इतना ही नहीं अपितु उनके इन त्यागपूर्ण निःस्वार्थ परोपकारों के कारण श्री प्रभु ने भी उन्हें अनेक सम्मान वर्द्धिका उपयुक्त पदवियों से अलंकृत किया। उसी पवित्र भूमि के वासियों को अतुल्य जीवन मुक्ति का पदक प्राप्त हुआ। तथा हमारा दृढ़ विश्वास है कि अन्त को न्याय के अवसर पर भी सौभाग्य

के अधिकाधिक पत्रपाश्या उन्हीं को प्राप्त होंगे। कारण सब से पूर्व उन्हों ने ही अपना सर्वस्व देकर ऊपरयुक्त अमूल्य रत्नों की उपलब्धि की। तथा समयोचित रक्षा सहित पुनः उनका उत्तम प्रचार भी उन्हों ने ही किया। अतः कृतज्ञता के सुन्दर नियमानुसार अब हम आपको भी उन पर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये।

छटी पंखड़ी

धर्मवीरों का सामन्त सुधार हित प्रस्थान

तथा

भारते पदार्पण

अब जब कि समस्त अ़रब के नर नारी श्री क़ुरान तथा उसके मार्मिक परोपकार सम्पन्न सिद्धान्तों से स्वयं लाभान्वित हो चुके। तब उन्होंने अपने गार्हस्थ्य सुख त्याग पूर्वक अपने दूर निकट सामन्तों सहित नाना प्रजाओं के सुधार हित दिव्य नादों में प्रस्थान किया। उन्हें उनके इस शुभ प्रयत्न में यद्यपि अनेक कष्ट भोगने पड़े तथापि प्रभु ने उन्हें वाञ्छित सफलतायें प्रदान कीं। वे धर्मवीर नाना कष्टों का भोग करते हुए समस्त अ़रब को सुपथ पर लाये। उन्हों ने समस्त मिश्र को सुपथ प्रदान किया। अफ़रीक़ा की जाङ्गलिक जातियों को इस्लाम का सुख प्रद आदेश पहुंचाया। उन्हें मनुष्यता उपयोगी रहन सहन का उचित परिचय कराया। मेदिया से ईरान सहित समस्त सामन्तों की प्रजा को आस्तिकता का रहस्य पूर्ण पाठ पढ़ाया। अन्त को धीरे २ तुर्किस्तान, अवगवनस्थान (अफ़ग़ानिस्तान) से अनीश्वर वाद का अवसान करते हुए प्रसिद्ध सिन्धु सहित भारते पदार्पण किया।

एक काँटा

पुराने धर्म विरोधी कंटकों से पाला

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू मुस्लिम विरोध का मुख्य कारण

यह प्रायः जगत प्रसिद्ध है कि श्री गुरू नानक देव जी ने अपने समय के दूर निकट रहने वाले बड़े छोटे सब ही प्रकार के मुस्लिम विद्वानों से देशाटन पूर्वक बहुविधि आलाप किये। उनके अनेक साक्षात पूर्वक प्रसङ्गों में से यह एक है जिसे हम "चार इमाम" के कथनानुसार श्री गुरू नानक देवजी के अपने शब्दों में सार रूप उद्धृत करते हैं। यह लेख श्री गुरू नानक देव जी की बड़ी "जन्म साखी" (बड़ी जीवनी) के प्र० ३०७ से

३०६ पर्यन्त आप देख सकते हैं। उस पूरे लेख का सार रूप इस प्रकार है।

"श्री मुहम्मद महोदय के ४०० वर्ष पूर्व जम्मू देशस्थ एक पहाड़ी राजा देहली पर राज करता था। उसने पंजाब प्रदेश के प्रसिद्ध वज़ीराबाद के निकट "स्यालकोट" नामक नगर में एक गढ़ की आयोजना की। जब उसकी नींव खोदी जा चुकी तब हिन्दू धर्मानुसार उसकी उस नवीन नींव में एक पुरुष की बलि (देवता की भेंट) देने की आवश्यकता हुई। उस समय वहां एक "तुर्कन" विधवा स्त्री रहती थी। जिसका एक ही पुत्र था। राजा ने निर्दयता पूर्वक उसी युवक को बलात्कार लेकर उस "कोट" की नींव में रख दिया। इस भयङ्कर अत्याचार से भयभीत वह "विधवा तुर्कन" शीघ्र ही "मक्कः" पहुंची। तथा वहां के प्रस्तुत राजा से उसने अपनी यह सारी अवस्था कह सुनाई। राजा इस "हृदय विदारक" समाचार को सुन अत्यन्त दुःखित हुआ। तथा उसने उक्त अत्याचारी राजा को उचित शिक्षा देने के निमित्त अपने निज पुत्र को अनेक सेनाओं सहित मुख्य सेनापति बना हिन्द पर आक्रमण की पहिली आज्ञा दे दी।"

"इस प्रकार यह ऊपर युक्त युद्ध उस समय से लेकर श्री मुहम्मद महोदय के अपने समय पर्यन्त चालु रहा। तथा आपने उस चार सौ वर्ष से चालु युद्ध को अपने बल विशेष से विजय किया"

ऐसा आपके उन सारे पदों से सार रूप स्थिर ज्ञात होता है। प्रकरणानुसार उन पदों के पूर्व, पर के कुछ श्लोक यहां उपस्थित करता हूं। ताकि आपको भी इस आज से १७६६ वर्ष पूर्व की अमानुषिक ऐतिहासिक दुर्घटना के युक्ति युक्त कारण का उचित परिचय हो सके।

पृष्ट ३०७ के आरम्भक श्लोक—

सुणी ऐ नानक शाह जी, आखण चार इमाम।
मसला सुणीं ऐ हिन्द दा, जिऊं आये मुसलमान॥
राजा जम्मू कोह दा, दिल्ली दा पातिशाह।
बधोये कोट सियाल उस, नीहवीं तुरक दिवाई।
हिन्द विच होया तुरक राज, हुकम खुदाई पाई॥
बेटा रंडी रन्न दे, इक्को ही घर सोई।
नीवीं दित्ता पातिशाह, तरस न कीतोसु कोई॥
तरस न कीता रब्ब दा, काफ़र ने मरवाई।
नट्ठी रंडी जान लै, पहुंची मक्के आई॥

पृष्ट ३०६ के अन्तिम श्लोक—

फ़ैसल हुआ न झगड़ा, मुद्दत बहुत बताई।
झगड़े ही विच उपजे, नबी रसूल खुदाई॥

जोरे नबी रसूल दे, होई ज़बत तब हिन्द।
पढ़िया खुतबा नबी दा, सुणिया, सकल, नरिन्द ॥

इसी विषय को विस्तार से जानने के अभिलाषी गण मूल पुस्तक को देखने का कष्ट करें। (इस्लामी साहित्य में आपके अपने समय एक राजा "श्री बानक" नामी ने इस्लाम स्वीकार किया ऐसा भी मिलता है। इस राजा के पास आप के भेजे हुए लगभग १० प्रसिद्ध गण आये थे जिनका उक्त राजा ने बहु सत्कार पूर्वक उत्तम सम्मान किया इत्यादि)

अब जब कि उन मुस्लिम वीरों ने भारत में पदार्पण किया तब उन्हें उन्हीं पुराने धर्म विरोधी कण्टकों से पाला पड़ा। उन वीरों ने यहां शक्ति भर उपकार की चेष्टा की किन्तु यहां के प्रमुख धर्माधिकरियों ने स्वाभाविक लोलुपता के कारण भारत के इस धर्मोपकार में नाना रोड़े अटका दिये। अनेक अनुचित विघ्न बाधायें प्रस्तुत कर दीं। इस हेतु यहां उन्हें वह अभिलषित सफलता नहीं हुई जो ऊपर युक्त प्रदेशों में उपलब्ध हो चुकी थी। किन्तु इस से वे इस्लामिक वीर हतोत्साह नहीं हुए। अपितु अपने जन्म सिद्ध अतुल्य धैर्य के साथ अपने परोपकार सम्पन्न प्रचार कार्यों में समान रूप से दत्तचित्त संलग्न रहे। यह उनकी धैर्य पूर्वक संलग्नता कैसी थी? इसे आप निम्न पंक्तियों में अनुभव करें।

ऐतिहासिक अनुमोदन—मुस्लिम जाति के लग्नवान सिद्ध साधु महात्माओं ने भारत में प्रवेश कर कैसी आश्चर्य जनक उन्नति की इसका अनुमोदन श्री गुरू नानक देव जी के उस लेख से भी होता है जो उन्हों ने सिन्ध प्रदेश के प्रसिद्ध सन्त महात्मा श्री शाह बहाउद्दीन औलिया महोदय के उत्तर में निवेदन किया है। देखो आपकी बड़ी जन्म साखी (पृ० ३२० से ३२१ व ३८६) आप के इन दोनों लेखों का सार इस प्रकार है।

(१) आध्यात्मिक भक्ति भाव की दृष्टि से "इमाम" तथा "भक्त" दोनों अभेद्य हैं।

तुरकां विच इमाम हैन हिन्दू भक्त कहन।
आखन अंदर दोए हन इक्को भेद दिसन ॥

(२) भक्तों में सब से उच्च स्थिति भक्त (श्री गुरू) कबीर (दास जी) हैं।

अव्वल भक्त कबीर है, दूजा रामानन्द।
पाया कबीर मरातबा, गुर मिल रामानन्द ॥

(३) चौरासी सिद्धों में सब से बड़े भक्त श्री (बाबा) "फ़रीद" हैं।

सिद्ध चौरासी अमर हैन, भक्तां विचा नरिन्द।
इक रहिन जग अमर सिद्ध, जब लग सूरज चान्द ॥

बड़ा भक्त फ़रीद है, शेख़ां अन्दर शेख़।
ज़ुहद कर तन साधिआ बस कीतोसु नफ़्स हमेश।।

(४) पुनः पृष्ट ३८६ में उन चौरासी सिद्धों की एक सूची दी है जिसमें हिन्दू मुस्लिम दोनों सिद्धों के नाम सम्मिलित रूप से वर्णित हुए हैं।

यथा—(१) भंगर (२) सगर (३) लंगर (४) भांगर (५) ऊरम (६) धूरम (७) कनीज़ा (८) हनीफ़ा (९) लहुरीया (१०) सागर (११) मंगर (१२) राज़ीरतन (१३) पूरन नासका (१४) बिवालका (१५) जालका (१६) किन्धड़ा (१७) निरता (१८) सुरता (१९) केवल करन (२०) खिमता (२१) गवन गल (२२) असर निध (२३) चतर बैन (२४) राउऐन (२५) मेलकरन (२६) अउगढ़ (२७) परबत (२८) ईसर (२९) भरथरी(३०) भूतवे (३१) करन सम (३२) शम्भू (३३) पलक निध (३४) अच्छर दैन (३५) पिंपलका (३६) सोरमा (३७) गिरबोध (३८) सालका (३९) केसर करन (४०) गैलस (४१) अग्निधार (४२) मुक्तीसर (४३) चलन नाचतो (४४) सूरऐन (४५) सिद्ध सैन (४६) गिरवर :(४७) जोत लगनी (४८) गोतमगनी (४९) विमल जोती (५०) सीतल जल (५१) अघरघर (५२) तुलसजोर (५३) प्रतपान (५४) अकार निर (५५) भोलसार (५६) रामकुमार (५७) कृपन कुमार (५८) बिसन पति (५९) संकर जोग (६०) ब्रह्मजोग (६१) मीर हुसैन (६२) नीर जम्बील (६३) कलन्दर नैन (६४) नालिन्दर नैन (६५) सुरसती (६६) गुवरधन (६७) गुफ़ालाशी (६८) अक़ल नाशी (६९) कलकसंगी (७०) एक रंगी (७१) केवल करमी (७२) करम नाशी (७३) कुल विनासी (७४) मूल मंत्री (७५) जोग दन्ती (७६) जोग हरे (७७) ईसर प्रंगी (७८) आप रूपी (७९) कलेस रूपी (८०) रहीम जोगी (८१) खलास मुग़ला (८२) किदार जोगी (८३) सम्मालका कहीये (८४) जोगी वचित्र कहीये।

(५) **मुस्लिम सिद्धों की नामा वली**— इन ऊपर युक्त ८४ नामों में से कौन २ नाम हिन्दू सिद्धों के तथा कौन २ मुस्लिभ सिद्धों के हैं यह बात आज सर्व साधारण को विना बताये अपने आप से ज्ञात हो जावे इसे हम कठिन समझते हैं। इस भाव से उक्त सूची के मुस्लिम नामों को हम यहां पृथक किये देते हैं ताकि सर्व साधारण को इसका उचित बोध हो जावे कि इस सूची में इतने मुस्लिम तथा शेष हिन्दू हैं। पुनः इन नामों में कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें साधारण ज्ञानी (पण्डित) हिन्दू कहते हैं परन्तु प्रकरणानुसार देखा जावे तो वे भी अहिन्दू ही हैं।

अब जिन नामों में कोई सन्देह नहीं तथा जिन में सन्देह है उन दोनों को ऊपर युक्त

मूल क्रमाङ्क से उठाकर ज्यूं का त्यूं नीचे रख देते हैं। इन में अपना संख्या बोधक नम्बर नाम के पहले, क्रमाङ्क सामने कोष्ट में, तथा सन्दिग्ध नाम के नीचे (—) इस प्रकार की एक पड़ी रेखा रहेगी। आशा है इस विधि इन नामों की यह पृथक २ ज्ञानकारी आप के लिये अधिक लाभ कारी सिद्ध होगी।

नामावली-१—कनीज़ा (७) २—हनीफ़ा (८) ३—राउ सेन (२४) ४—सालका (२८) ५—सूरऐन (४४) ६—गोतमगनी (४८) ७—मीर हुसैन (६१) ८—मीर जम्बील (६२) (मीर जम्बील या मीर जमील) ६—कलन्दर नैन (६३) १०—नलिन्दर नैन (६४) ११—गुफालाशी (६७) १२—अकलनाशी (६८) १३—कलक संगी (६६) १४—एकरंगी (७०) १५—केवल करमी (७१) १६—करम नाशी (७२) १७—कुल विनासी (७३) १८—मूल मंत्री (७४) १६—जोगदन्ती (७५) २०—जोग हरे (७६) २१—ईसर प्रंगी (७७) २२—आपरूपी (७८) २३—कलेसरूपी (७६) २४—रहीम जोगी (८०) २५—खलास मुग़ला (८१) २६—सम्भालका (८३) २७—जोगी विचित्र (८४)

उक्त ८४ में से २७ नाम उन मुस्लिम सिद्धों के हैं जिन्हें श्री गुरु नानक देव जी ने अपने छाया रूप संगी "श्री मरदाना" (मर्दाना) नामक एक मुस्लिम व्यक्ति के विशेष आग्रह पर उसे अपने श्री मुख से स्वयं वर्णन किया है। देखो आपकी बड़ी जन्म साखी (पृ० ३८६)

(६) इसी प्रकार श्री गुरु ग्रन्थ साहेब में भी कुछ नाम आये हैं जो बड़े आदर सत्कार के योग्य समझे जाते हैं। देखो तारीख़ गुरु ख़ालसा हिस्सा १ नम्बर २ (प्र० ७२७) इन कतिपय स्पष्ट उदाहरणों से सिद्ध हो जाता है कि श्री इस्लाम के मानने वाले धर्म प्रचारकों ने केवल मौखिक रूप ही से नहीं अपितु श्रम सहित क्रम पूर्वक आश्चर्य जनक तपस्या से भी अद्भुत प्रचार किया है।

उद्यम का फल- इस का असाधारण फल यह हुआ कि आज ईश्वर की अनुकम्पा से भारत की मूल २६ कोटि जन संख्या में सम्प्रति ६ कोटि मुस्लिम तथा २० कोटि में अन्य अल्प संख्यक आर्य्य समाजी, ब्राह्मो समाजी, प्रार्थना समाजी, सिक्ख, जैन, बौद्ध, पार्सी, यहूदी, आनिमिस्ट, तथा मूल भारत के कुछ प्रसिद्ध कोल, भील आदि अशिक्षित जातियां ही शेष रह गई हैं।

सातवीं पंखड़ी
सैद्धान्तिक विजय

इन में भी सैद्धान्तिक रूप से देखा जावे। तो ब्राह्मो समाजी, आर्य्य समाजी, सिक्ख समाजी तथा उनके अतिरिक्त अन्य अनेक सुधार प्रिय समाजों ने भी इस्लाम धर्म से यथेष्ट लाभ उठाया है। संक्षिप्त रूप से इस लाभ को आप निम्न पंक्तियों में अवलोकन करें।

भारत के धर्म सुधार में इस्लाम का प्रभाव-भारतीय लोगों ने इस्लाम से क्योंकर लाभ उठाया, कब व किन कारणों से उन्हें लाभ पहुंचा इत्यादि इसमें नाना महत्व पूर्ण ज्ञातव्य विषय हैं। जिन्हें इस स्थल पर भली भान्ति वर्णन करना हमारे लिये असम्भव नहीं तो समयाभाव से कठिन अवश्य है। इस हेतु हम उनके विस्तार से बचते हुए केवल कुछ एक मोटे २ उदाहरण संक्षेप से उपस्थित करते हैं जिन से आपको उनके सुविधा सहित समझने में अधिक लाभ हो।

१—पहले तो यह देखना चाहिये कि इस्लाम धर्म के आगमन पूर्वक भारतीय धर्म की क्या स्थिति थी? आया उसे अपने सुधार की आवश्यकता थी भी या नहीं?

२—दूसरी बात भारत के मुख्य धर्म सुधारकों में बड़े २ प्रसिद्ध सुधारक कब हुए? तथा उन्हों ने जो जो सुधार किये वे इस्लाम ही से लिये, अथवा उनके अपने ही शास्त्रों में पाहले उपस्थित थे?

३—तीसरी अधिक विचारणीय बात यह है कि जिन्हों ने मुख्य रूप से हिन्दू धर्म का सुधार किया है कहीं वे स्वयं इस्लाम धर्म से प्रभावित तो नहीं थे?

४—चौथी बात यह कि जिस सुधार को उन्हों ने उपस्थित किया है। वही सुधार कहीं उनकी प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध इस्लामी प्रचार का समर्थक तथा उनकी अपनी धार्मिक परम्परा का निन्दक तो सिद्ध नहीं होता?

५—पांचवीं बात यह भी जानने योग्य है कि इन समस्त सुधारकों ने जिस मूल वस्तु को धारण योग्य वर्णन किया है। आया उस में उन्हें आपस में अथवा अपने पूर्वजों से किसी प्रकार का कोई ऐसा विरोध तो दृष्टि गोचर नहीं होता कि जिस के कारण वे अपने प्रमाणभूत अनुकरणीय शास्त्रों में परिवर्त्तन के भागी समझे जाकर एक दूसरे के घृणा पात्र ठहरें?

इस प्रकार इन कतिपय विचारणीय साधनों की मुख्य भित्ति पर अब भारतियों के इस्लाम से लाभान्वित होने का आप स्वयं भी आसानी से पता लगा सकते हैं।

ऊपर कथित भित्तियों का संक्षिप्त विचार

(क) पहिली भित्ति के सम्बन्ध में तो मेरे जैसे पुरुष का कुछ कहना ही व्यर्थ है। कारण

इस बात को आप मुझ से अधिक जानते हैं कि इस्लाम के भारत में आने के पूर्व हिन्दू धर्म की ठीक वही अवस्था थी जो कि श्री मुहम्मद महोदय के अपने समय वहां के मूल वासियों की थी। भेद इतना ही था कि वहां के लोग अपने को "अरब" तथा यहां के "हिन्दू" कहते थे। शेष धर्म कर्म की मन्तव्यामन्तव्य रूपी सब बातें प्राय: एक समान ही थीं, इसमें कोई सन्देह नहीं। ईशातिरिक्त इष्ट देवों की संख्या उन से यहां अवश्य अधिक थी जिसे बहुधा आप सब अच्छी तरह जानते हैं। उनके पास कोई शास्त्र विशेष नहीं था। इनके पास भिन्न २ शास्त्रों तथा भिन्न २ मतों के भूरि भेद युक्त नाना प्रचारक थे। जिसका प्राय: हिन्दू शास्त्रों ने स्वयं स्पष्ट वर्णन किया है।

यथा—(१) वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्ना नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्"। (महाभारत)

अर्थात्—भारत में भिन्न २ वेद हैं। भिन्न २ स्मृतियां, तथा ऐसा कोई मुनि नहीं कि जिसका अपना मत दूसरे मुनि से भिन्न न हो।

यद्यपि इस एक ही उदाहरण से हिन्दू धर्म सुधार की आवश्यकता का पूरा बोध हो जाता है तथापि दो एक उदाहरण और भी आपकी अधिक ज्ञान कारी के लिये उपस्थित किये देता हूँ ताकि उनसे आप के सन्तोष में पूरी स्थिरता बनी रहे।

देखो पूजा तथा इष्ट देवों के सम्बन्ध में हिन्दू शास्त्र क्या कहते हैं।

(२) "अप्सु देवो मनुष्याणां दिवि देवो मनीषिणां। बालानां काष्ट लोष्टेषु बुध स्यात्मनि देवता"॥

अर्थात्—जैसे बच्चों को लकड़ी और मिट्टी के खिलौनों में देवता बुद्धि होती है, वैसे ही साधारण पुरुषों को जल, नदी, तालों में देवता बुद्धि होती है। तथा उच्च कोटि के ऋषि मुनियों को देव लोक में रहने वाले सूर्य, चन्द्र, तथा नक्षत्रों में देवता बुद्धि होती है।

अब ब्रह्म सम्बन्धी विचार भी देख लीजिये।

(३) "ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हवि ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतं।'
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना॥

अर्थात्—हवन करना भी ब्रह्म है। हविष पदार्थ भी ब्रह्म है। और हवन करने वाला भी ब्रह्म ही है। (गीता)

पुन: ईश्वर तथा उसके पूजा फल को भी अवलोकन करें।

(४) " जल, पाषाण, मृत्काष्ट, वास्या, कुद्दाल कादयः।
ईश्वराः सर्व एवैते पूजितः फल दायिनः॥

अर्थात् जल, पत्थर, मिट्टी, काठ, लोहा और कुदाल आदि ये सब ईश्वर ही हैं। इनकी पूजा करने से ये अवश्य ही फल प्रदान करते हैं।

इस प्रकार भारतीय धर्म ग्रन्थों में नाना प्रमाण पाये जाते हैं जिनकी उपस्थिति में इस्लाम के सम्मुख हिन्दू सुधारकों को स्वयं हिन्दू धर्म के सुधार के लिये कटि बद्ध होना पड़ा, ऐसा हमारा निश्चित मत है।

ख—दूसरी भित्ति के सम्बन्ध में हम भारत के प्रमुख सुधारकों में तीन नाम पाते हैं। श्री गुरु नानक देव जी, श्री राजा राम मोहन राय जी तथा श्री स्वामी दयान्द जी महाराज। इन तीनों ने इस्लाम से प्रभावित हो हिन्दू धर्म को यथा शक्ति सुधारने की पूरी चेष्टा की परन्तु कट्टर हिन्दुओं ने इन्हें अग्रसर नहीं होने दिया।

(१) इनमें से श्री गुरु नानक देव जी आज से ४७० वर्ष पूर्व हुए। श्री राजा राम मोहन राय जी १६८ वर्ष पूर्व तथा श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ११६ वर्ष पूर्व हुए हैं। इन तीनों में से पूर्व की दो व्यक्तियां अरबी, फ़ार्सी आदि भाषाओं की ज्ञानकार तथा अन्तिम महाशय मूल भाषाओं से परिचित न थे।

(२) इन में से श्री गुरु नानक देवजी ने लगभग हिन्दुओं की सब बातों को बल पूर्वक खण्डन करके इस्लाम की अन्तिम विजय को खुले शब्दों स्वीकार किया है। श्री राजा राम मोहन राय जी ने केवल "ब्रह्म" शब्द को शेष रखा है। श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने वेदों के अतिरिक्त सब कुछ त्याग एक ईश्वर वाद का योग्य वर्णन किया है।

(३) इस प्रकार इन तीन व्यक्तियों द्वारा इस्लाम धर्म का हिन्दू धर्म पर अधिक प्रभाव हुआ, ऐसा आप उन के अपने २ साहित्य से भी जान सकते हैं। आज ये तीनों ही क्रमश: सिख, ब्राह्मो तथा आर्य्य नाम से प्रसिद्ध हैं। ये अपने आपको हिन्दू स्वीकार नहीं करते न उनके कर्म काण्डादि को ही (स्वामी दयानन्द के अतिरिक्त) आचरणीय समझते हैं।

ग—उक्त तीनों सुधारक इस्लाम से प्रभावित थे, यह आप उनके अपने सुधार सिद्धान्तों से भी जान सकते हैं, जिनका हिन्दू शास्त्रों में कोई पता नहीं। श्री गुरु नानक देव जी के सम्बन्ध में तो इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि उन्हों ने इस्लाम को वैसा ही उपयोगी स्वीकार किया है जैसा कि मुस्लिम स्वयं मानते हैं। श्री राजा राम मोहन रायजी ने अपनी अरबी फ़ार्सी शिक्षा के पश्चात् जो सब से पहला ग्रन्थ लिखा उसका नाम उन्हों ने "तुह्फ़तुल् मवाहेदीन" रखा। उसे आप आज भी देख सकते हैं। उसके पश्चात् उन्होंने पूरी खोज बीन करके वेदों को अप्रमाणिक सिद्ध किया तथा प्रचलित हिन्दू धर्म विश्वास पर पूरा आक्रमण किया। "मूर्त्तिपूजा" के विरुद्ध पुस्तकें लिखीं। "मिरातुल् अख़बार" नामक पत्र निकाला इत्यादि। यह उनका समस्त साहित्य देखने योग्य है। श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज इस्लाम से प्रभावित अवश्य थे परन्तु अरबी साहित्य न जानने के हेतु उन्हों ने इस्लाम पर स्वयं कुछ नहीं लिखा।

पहले पहल उन्होंने मुसलमानों की रक्षा में प्रचलित हिन्दू धर्म के विरुद्ध अनेक व्याख्यान दिये। उन दिनों वे प्राय: मुसलमानों के यहां अतिथि रूप से भी ठहरा करते थे। भद्र मुसलमान, हिन्दुओं के सम्मुख उनकी पूरी रक्षा करते थे। बड़े २ मौलवियों से भी वे सदा मिलते थे। अन्त को "इन्द्रमणि" नामक एक मुन्शी व्यक्ति द्वारा उन्हें कुछ सन्दिग्ध सामग्री मिलने लगी। कुछ अंग्रेजी पढ़े हिन्दू भी साथी हो गये। इससे वे इस्लाम से विमुख हो वेदों के कट्टर पक्षपाती बन गये। परन्तु इन दोनों व्यक्तियों के थोड़े से आपस के सहयोग से स्वामी दयानन्द जी को अपने अन्य लेख सुधार सम्बन्धी बीजों का एक अच्छा संग्रह मिल गया। जिसको प्राप्त करने के उपरान्त शीघ्र ही दोनों में पूर्ण मत भेद उत्पन्न होगया। इसका साधारण परिणाम यह हुआ कि एक ने दूसरे की ज्ञान कारी तथा ईमान दारी पर भी भारी आक्षेप किये इत्यादि।

उपस्थित इस्लाम सम्बन्धी समस्त लेख उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके नाम से लिखे तथा उनकी पुस्तकों में सम्मिलित किये गये हैं। ऐसा बहुधा विचार शीलों का अन्तिम मत है। देखो आदि सत्यार्थ प्रकाश आदि।

घ—अब तीनों महा पुरुषों ने जो जो सुधार किये हैं उन्हें आप उनके अपने २ उपस्थित साहित्य में देख सकते हैं। उन में ऐसी कोई बात नहीं जो हिन्दू जनता को उनके प्राचीन हिन्दू धर्म से हटाकर मुस्लिम धर्म के निकट तर न कर देती हो। भारत में इस्लामी सिद्धान्तों की सबलता का मुख्य हेतु तथा उनके शान्त प्रचार का यही प्रमुख प्रभाव है।

उदाहरण-आप आधुनिक ब्राह्मो समाज तथा आर्य्य समाज के सुधारों से अवश्य ही कुछ कुछ परिचित हैं। परन्तु इन दोनों से पूर्व सिख समाज के हिन्दू सुधार से प्राय: आपको पूर्ण परिचय नहीं। अत: उन्हें हम यहां आप हिन्दी भाषा भाषियों की विशेष ज्ञान कारी के लिये उनके कतिपय गुरमुखी ग्रन्थों से कुछ संक्षिप्त रूप उदाहरणों के साथ उपस्थित करते हैं। आशा है आप उन्हें ध्यान पूर्वक अवलोकन कर उनसे उचित लाभ लेंगे।

(१) हिन्दू धर्म के मायावी लोग-"प्रेम सुमार्ग" नामक पुस्तक के पृष्ट ५२ में लिखा है कि (हिन्दू धर्म के) सन्यासी, वैरागी, जोगी, ये सब माया से सिखों को धोका देने वाले हैं। अर्थात् ये विश्वस्तीय नहीं।

(२) नरक का हेतु अछूत लोग-उक्त पुस्तक पृ० ५३ में लिखा है कि दाढ़ी, केशधारी सिख- सन्यासी, वैरागी, जोगी, इन तीन के छूजाने से नरक को जाता है। अर्थात्—हिन्दू धर्म के ये मुख्य साधु सिखों के निकट "अछूत" हैं। अत: सच्चे सिखों को यत्न पूर्वक इनसे पृथक रहना चाहिये। अन्यथा वे नरकाधिकारी होंगे।

(३) सच्चा ख़ालसा कौन है? उक्त पुस्तक पृ० ६२ में लिखा है कि सच्चे ख़ालसा

पुनः पृष्ठ ४१ में कहते हैं कि "ईशातिरिक्त के पुजारी आपस में लड़ाने वाले होते हैं। अर्थात् वे सन्सार में शान्ति भङ्ग करने वाले तथा उपद्रव का हेतु होते हैं इत्यादि।"

भक्ति तत्त्व में दोनों समान हैं—पृ० ६० में कहते हैं कि "पीर और भक्त दोनों समान हैं"। अर्थात् श्री गुरु गोविन्द सिंह जी की दृष्टि में एक सच्चा पीर तथा ईश भक्त सिख=(इस्लाम का सच्चा शिष्य) ये दोनों प्रभु भक्ति में समान हैं।

इसी प्रकार प्रायः बहुधा सिखों का आज भी यह विचार है कि "बाबा व बाबर" इन दोनों को ख़ुदा ने बनाया वा भेजा है। अर्थात् श्री बाबर शाह के समय श्री गुरु नानक देव जी आध्यात्मिक वाद के तथा श्री बाबर प्रत्येच्च राज के दो राजा थे। इसी बात को आप उक्त पुस्तक के अध्याय १३। पृष्ठ १— से भी देख सकते हैं। इस प्रकार गुरुओं के आरम्भक काल में प्रायः इस्लामी सिद्धान्तों का पूरा २ समर्थन किया जाता था। अब आप इन समस्त स्थलों को इकट्ठा करके देखिये तो आप भली भान्ति जान सकेंगे कि सिख सुधारकों के सम्मुख हिन्दुओं के तात्विक सुधार के प्रति ब्राह्मो समाज अथवा आर्य्य समाज ने कोई नूतन बात नहीं कही। अपितु इन्होंने जो कुछ भी कहा, किया, वह इसी पूर्व सुधार से लेकर अपने २ ढङ्ग के नूतन शब्दों में वर्णन कर दिया है। इस से अधिक और कोई विशेषता नहीं। इस दृष्टि से भारतीय हिन्दू धर्म के मुख्य सुधारक पहले मुस्लिम, दूसरे सिख समाज के मुख्य गुरु गण, तथा गौण सुधारकों में पहले अंग्रेजी राज का प्रभाव, दूसरे ब्राह्मो समाजी तथा तीसरे नम्बर पर आर्य्य समाजी कहे जा सकते हैं।

२१—अंग्रेज़ी राज के हिन्दू सुधार-आज जिन अंग्रेज़ों को हिन्दू, मुसलमानों के सदृश अछूत, म्लेच्छ, एवं अपवित्र समझ कर घृणा करते हैं। इनके राज शासन में भी हिन्दुओं का बहु विध सुधार हुआ है। उनमें से हम कुछ ऐसे प्रमुख सुधारों को उद्धृत करते हैं जिन्हें विशेष प्रतिष्ठा सम्पन्न हिन्दू लेखकों ने भी स्वीकार किया है। उदाहरण के लिये उन अनेक में से हम एक विद्वान् श्री पण्डित बदरि दत्त जी जोशी का वह लेख उपस्थित करते हैं, जिसे श्री स्वामी बोधा नन्द जी महाराज ने अपनी "मूल भारत वासी और आर्य्य" नामक पुस्तिका की भूमिका के पृ० ६—१३ पर्यन्त में उनके अपने शब्दों में वर्णन किया है।

प्राचीन हिन्दू धर्माचार दर्शन
तथा
उनके विचारणीय सुधार साधन

" बहुत से आचार जो धर्म के नाम से उन्नीसवीं सदी के मध्य तक हमारे देश में प्रचलित थे। और जिनके कारण समाज में मनुष्य जाति पर बड़े २ "अन्याय" और "अत्याचार" होते थे।

उनको ब्रिटिश सरकार ने शान्ति स्थापन होने के बाद क्रमशः क़ानून के ज़ोर से बन्द किया है। "यदि वे बन्द न किये जाते" तो आज हमारी यह सभ्यता जिसका हम अभिमान करते हैं, न मालूम "किस कोने में छिपी हुई होती" और हमारी दुर्दशा पर "फूट २ कर आंसू बहाती होती"। उन में से "कुछ आचारों का परिचय" हम यहां पर पाठकों को देना चाहते हैं।"

१–चरक पूजा—यह प्रथा बंगाल में प्रचलित थी। काली के उपासक देवी को प्रसन्न करने के लिये इसका अनुष्ठान करते थे। एक सीधी बल्ली २५ या ३० फ़ीट लम्बी भूमि में गाड़ी जाती थी, उस के निचले सिरे पर एक तिरछा डंडा लगा दिया जाता था, जो चर्खी के समान घूमता था, डंडे के एक सिरे से एक रस्सी लटका कर उस में लोहे के दो हुक लगाए जाते थे, दूसरी एक और रस्सी बांधी जाती थी, जो धरातल तक लटकी रहती थी। दीक्षित उपासक बल्ली के सामने आकर पहले देवी को दंडवत् करता था, तत्पश्चात् ये दोनों हुक उसके कंधे के पास पीठ की ओर मांस में घुसा दिये जाते थे। दूसरा मनुष्य रस्सी पकड़ कर ज़ोर से घुमाता था। जो उपासक इस कष्ट को जितना अधिक सहन करता था, उतना ही वह भाग्यवान् समझा जाता था। और जो इस कष्ट से प्राण त्याग देते थे, वे सायुज्य मुक्ति के भागी समझे जाते थे। सरकार ने सन् १८६३ ई० में क़ानून के द्वारा इस निष्ठुर प्रथा को बंद किया।

२-हरि बोल-यह प्रथा भी बंगाल में प्रचलित थी। जो रोगी असाध्य हो जाता था, या मरणासन्न होता था, उसको गंगा में ले जाकर स्नान कराते थे, और पानी में गोता देकर उस से कहते थे, कि "हरि बोल, बोल हरि"। यदि वह शीघ्र प्राण त्याग देता था, तो भाग्यवान् समझा जाता था। यदि कठिन प्राण होने से किसी की जीवन लीला शीघ्र समाप्त न होती थी, तो उसे पुनः घर वापिस नहीं लाया जाता था। वहीं बड़े दुःख से तड़प २ कर वह प्राण विसर्जन करता था। इस जघन्य प्रथा को भी सरकार ने सन् १८३१ में क़ानून बनाकर बंद किया।

३—सती दाह—यह प्रथा सारे भारत वर्ष में प्रचलित थी। विधवा स्त्री को उसके पति की लाश के साथ चिता में जलाया जाता था। कष्ट की वेदना से वह कहीं चिता में से कूद न पड़े, इस लिये जब तक चिता में आग खूब प्रज्वलित न हो जाती थी, उसको बांसों और बल्लियों से रोका जाता था। इस अमानुषिक प्रथा को भी सरकार ने सन् १८४१ ई० में क़ानून बना कर बन्द किया।

४—पुत्री बध—राजपूताना और उड़ीसा में इस दुष्ट प्रथा का अधिक प्रचार था। कुलाभिमानी क्षत्रिय इस भय से कि कहीं हमें किसी का सुसरा और साला बनना पड़ेगा, पैदा होते ही पुत्रियों का गला घोंट देते थे। इस जघन्य प्रथा को सरकार ने सन् १८७० ई० में एक्ट ८ पुत्री बध प्रतिरोध पास करके बंद किया।

५—**नर मेध**—उत्तर भारत और दक्षिण में यह प्रथा भी कहीं २ प्रचलित थी। किसी अनाथ या निर्धन मनुष्य को दीक्षित करके यज्ञ में उसकी बलि चढ़ाई जाती थी। ऋग्वेदीय शुन शेफ़ (शुनः शेफ़) सूक्त को इसका आधार माना जाता था। इस निष्ठुर प्रथा को ब्रिटिश सरकार ने सन् १८४५ ई० में एक्ट २१ पास करके दूर किया।

६—**गंगा प्रवाह**—माता पिता संतानोत्पत्ति के लिये अपने इष्ट देव से प्रार्थना पूर्वक यह प्रतिज्ञा करते थे, कि यदि हमारे संतान उत्पन्न हुई, तो पहले बच्चे को हम देवता की भेंट चढ़ायेंगे। इस निष्ठुर प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये वे अपनी पहली संतान को (चाहे पुत्र हो या पुत्री) गंगासागर में छोड़ देते थे। इस प्रथा को हमारी सरकार ने सन् १८३५ ई० में क़ानून के द्वारा बंद किया।

७—**काशी करवट**—बनारस में आदि विश्वेश्वर के मन्दिर के पास एक कूप है। जिसका दर्शन केवल सोमवार को होता था। लोगों का विश्वास था कि शिव जी इस में वास करते हैं। इसी विश्वास के कारण लोग उसमें कूद कर सदा के लिये करवट लेते थे। इस प्रथा को भी सरकार ने क़ानून के द्वारा बंद किया।

८—**भृगूत्पन्न**—गिरनार और सतपुड़ा की घाटियों में प्रायः नवयुवक पहाड़ की चोटी से नीचे गिर कर अपने प्राण देते थे। कारण इस का यह होता था कि उन की मातायें महादेव जी से (जो हिन्दू विचारानुसार संसार के संहार करने वाले हैं।) यह अभ्यर्थना करती थीं, कि यदि हमारे सन्तान उत्पन्न होगी, तो हम पहली सन्तान से भृगूत्पन्न की रीति पूरी करायेंगी। बड़े होने पर मातायें अपने पुत्रों से इस कथा का वर्णन करती थीं। नवयुवक मातृ-ऋण का शोध करने के लिये धार्मिक विश्वास के कारण पहाड़ से कूद कर अपनी जान देते थे। इस प्रथा का नाम "भृगूत्पन्न" था। इसको भी सरकार ने सदा के लिये बन्द किया।

९—**धरना**—याचक लोग विष या शस्त्र हाथ में लेकर गृहस्थों के द्वार पर धरना धरते, और कहते थे कि या तो उनकी कामना पूरी की जाये, अन्यथा वह (वे) यहीं प्राण त्यागेंगे। लोग डर के मारे उनकी अनुचित इच्छाओं को भी पूरा कर देते थे। इस प्रथा को सरकार ने सन् १८२० ई० में क़ानून बना कर बन्द किया।

१०—**महा प्रस्थान**—जल में डूब कर या अग्नि में जल कर मरने का नाम महा-प्रस्थान था। धार्मिक विश्वास के कारण इस प्रकार से मरने से मुक्ति का होना मानते थे। राजा शूद्रक ने भी महा-प्रस्थान किया था, जिसका वर्णन "मृच्छ-कटिक" नाटक में है। इस प्रथा को भी सरकारी क़ानून ने ही देश से मिटाया।

११—तुषानल—कोई कोई अपने को किसी अपराध के होने पर भूसा या तृण की आग में जला कर भस्म कर देते थे। और इस प्रकार अपने पाप का प्रायश्चित्त करते थे। "कुमारिल भट्ट" ने बौद्धों से विद्या ग्रहण करने का प्रायश्चित्त इसी "तुषानल" में जल कर किया था। इस को भी सरकारी क़ानून ने ही नाम शेष किया।

१२—रथ-यात्रा—जब जगन्नाथ जी की रथ पर सवारी निकलती थी, तब उस रथ के नीचे पिस कर मरना मोक्षदायक समझा जाता था। हर तीसरे वर्ष यह यात्रा होती थी, और बहुत से मनुष्य इस की भी भेंट चढ़ते थे। सरकारी क़ानून ने इस प्रथा को भी नाम शेष किया।

इस हिन्दू विद्वान् की अपनी साक्षी को पढ़ कर आप को हिन्दुओं के प्राचीन धर्माचारों के सुधार की आवश्यकता का ज्ञान इस स्थल पर अच्छी तरह हो सकता है। पुनः ये धार्मिक आचार कैसे भयङ्कर थे? यह बात भी आप उनके निज शब्दों ही से जान सकते हैं। वे हिन्दू समाज में "मनुष्य जाति पर बड़े बड़े अन्याय, और अत्याचार का हेतु थे"। ये धर्माचार निष्ठुर, जघन्य, अमानुषिक, दुष्ट तथा अनुचित इच्छाओं की पूर्ति का साधन मात्र, प्रतिज्ञायें एवं परम्परा से चालु धार्मिक मोक्ष प्राप्ति के मुख्य साधन थे। पूर्व कालीन हिन्दू, राजा प्रजा तथा उनके धार्मिक आचार्यों सहित सब लोग इन्हें वेदानुकूल आचरणीय धर्म समझते थे। परन्तु इनका वास्तविक स्वरूप वही था, जो कि उक्त विद्वान् के कथनानुसार ब्रिटिश राज के बुद्धिमानों ने क़ानून बनाकर पूरा किया। इसी प्रकार की और भी बहुत सी ऐसी बातें हैं, कि जिन्हें पहले हिन्दू स्वार्थवश धर्म समझते थे परन्तु अब वे स्वयं ही उन्हें धर्म विरुद्ध मानते हैं।

यथा—शूद्र के तप करने से किसी ब्राह्मण बालक का मरना, पुनः ऋषियों की आज्ञा से ऐसे तपस्वी शूद्र का बध होना, देवताओं की साक्षी कि तपस्वी शूद्र बध योग्य ही है, उसे ब्राह्मण की उपस्थिति में तपस्या का कोई अधिकार नहीं। देखो (वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड सर्ग ७३ से ७६ तक)

पुनः महाभारत आदि पर्व अध्याय १३४ में है कि एक निषाद राजा का पुत्र एक ब्राह्मण के पास धनुष विद्या सीखने जाता है। परन्तु ब्राह्मण ने उसे निषाद होने के कारण नकार दिया। इस पर उसने अपने निज श्रम से उस विद्या को अन्य उपाय से प्राप्त कर लिया। जब यह बात उसे ज्ञात होगई, तब उस ब्राह्मण ने छल से उस निषाद के दहिने हाथ का अंगूठा कटवा लिया। ऐसी बातों को अब विचारशील हिन्दू अनीति तथा अत्याचार की बातें कहते हैं। फिर—बंगला "विश्व कोष" भाग ६, पृष्ठ ७३६ में लिखा है कि—मरहठों के राजत्व काल में इस देश में नाना भान्ति के कुनियम प्रचलित थे। जब रघुनाथराव को सूबेदारी प्राप्त हुई, तब अंग्रेजी सरकार के पास उन्होंने एक प्रार्थना पत्र लिखा था, उस प्रार्थना पत्र से इन कुनियमों के कुछ परिचय मिलते हैं। उस में लिखा था

कि 'विधवा—स्त्रियां क्या पहले ही की तरह बेची जायेंगी और उस (उन) का मूल्य सरकारी खज़ाने में लिया जायगा या नहीं ? कोई व्यक्ति राज कर्म चारी लोगों के हुकूम से या किसी मध्यस्थ द्वारा धन प्राप्त होने पर पहले की तरह उस मिले हुए धन का चतुर्थांश सरकार को देगा कि नहीं ? कोई अपना घर या अपनी लड़की बेचने पर पहले की तरह उसका चतुर्थांश राजा को देगा कि नहीं ?" इत्यादि (मूल-भारत वासी और आर्य पृ० ७—८)। इन अन्तिम प्रमाणों से ५ बातें और सिद्ध होती हैं अर्थात् हिन्दू राजत्व काल में शूद्रों का तप ब्राह्मणों के प्रति हानिकर होने के कारण राजा लोग उन्हें प्राण दण्ड का भागी समझते थे। निषाद जाति के लोग स्वयं राजा होने पर भी ब्राह्मणों से धनुर्विद्या सीखने के अधिकारी नहीं थे। इतना ही नहीं अपितु अपने निज श्रम से उन्नत होने पर भी अङ्ग विच्छेद के भागी होते थे। विधवा स्त्रियाँ पहले तो सती विधान के अनुसार अपने पति के सङ्ग जला दी जाती थीं, यदि किसी प्रकार इस धर्म दण्ड से बच निकलें तो फिर उन्हें गाये घोड़ों की भान्ति बिकना पड़ता था, तथा उनके बेचने वालों को उनका जो कुछ भी मूल्य मिलता था, उसका चलीसवां भाग प्रस्तुत राजा को दिया जाता था। इसी प्रकार घरों तथा कन्याओं की भी बिक्री होती थी। इस विधि ऊपर-कथित १२ अमानुषिक अत्याचार तथा मोटा मोटी शूद्र तप, निषाद का धनुर्विद्या अध्ययन निषेध, सीखने पर अङ्ग विच्छेद, विधवा स्त्री तथा कन्याओं की बिक्री ये ५ सामाजिक कुनियम कुल १७ सुधार ऐसे हैं कि जिन से कोई हिन्दू किसी समय में भी इनकार नहीं कर सकता, अतः ये सब मौलिक सुधार पवित्र इस्लाम धर्म का वह उत्तम प्रभाव है कि जिसे आज कुछ इस्लाम विरोधी नाम के हिन्दू सुधारक अपने निज शास्त्रों की विजय तथा अपने २ नाम का व्यर्थ धौंसा पीटना चाहते हैं। हमारी ओर से उन्हें इतना ही कहना है कि उन्हें क़ुरान कार का यह प्रण अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि "वह प्रभु अपनी ज्योति को पूर्ण करके ही रहेगा, यद्यपि उसके न मानने वालों को उसकी ज्योति का पूरा होना अच्छा न लगे" (क़ुरान २८।६ ।)

ङ—पांचवीं भित्ति का विचार—अब ऊपर युक्त पांच भित्तियों में से अन्तिम भित्ति को देखना चाहिये कि इन भारत के मुख्य सुधारकों ने जिस धारण योग्य वस्तु को वर्णन किया है आया उस में इनका अपना अथवा अपने पूर्वजों से कोई ऐसा विरोध तो नहीं कि जिसके कारण ये अपने मूल शास्त्रों में परिवर्त्तन करने वाले सिद्ध हों ? अथवा मूल हिन्दू धर्म के उपस्थित रक्षक गण इन्हें ऐसा समझते हों ? किमवा इसी सुधार के कारण ये नूतन सुधारक आपस में भी एक दूसरे के घृणा पात्र तो नहीं समझे जाते ?

इन छे बातों का क्रमशः यहां विचार करना उचित प्रतीत होता है।

१—धारण योग्य वस्तु—अब जहां तक हमने इन तीनों सुधारकों के निज साहित्यों का

उचित स्वाध्याय किया है, वहां तक इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि इन्हों ने ईश सत्ता को अवश्य ही माना है। तथा उसकी व्यापकता को भी वैसा ही स्वीकार करते हैं, जैसा कि विशुद्ध इस्लाम ने वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में श्री ओंकार (अल्लाह=आदि पुरुष=निरङ्कार) के प्रचारक श्री गुरु नानक देव जी का निज कथन श्री इस्लाम का १६ आना अनुमोदन करता है। भाषा भेद को छोड़ इस विषय में दूसरा कोई मुख्य भेद दृष्टि गोचर नहीं होता। तात्विक दृष्टि से आरम्भक सिख धर्म इस्लाम से उतना ही निकट तम है, जितना कि भारतीय हिन्दू धर्म, कर्म तथा उनके वैदिक, पौराणिक आचार विचारों से दूर तर है। रहा ब्राह्मो समाज-सो यह बिना भाषा बन्धन समान रूप से सर्व व्यापी सत्ता को ब्रह्म नाम से सब में स्वीकार करता है। यह किसी पुस्तक विशेष को उसका मूलाधार नहीं मानता। अपितु भक्ति के योग्य बातें सब भाषाओं से संग्रह करते हैं। मुख्य भक्तों की आध्यात्मिक वाणियां इनके समूह रूप समाज का मुख्यादर्श हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से सिखों की भान्ति यह भी अपने को हिन्दू नहीं कहते। न उनके मुख्य आचार विचारों को ही आदरणीय समझते हैं। इनके सर्व साधारण काम प्रायः इनकी निज ज्ञान बुद्धियों पर ही निर्भर होते हैं, कहीं २ भक्त विशेषों का आश्रय ले लेते हैं, पर अधिक तर बुद्धि पूर्वक स्वतंत्रता ही को मुख्य मानते हैं।

आर्य्य समाजी—ईश सम्बन्धी युक्ति युक्त विचारों में आर्य समाजी अपने ऊपर कथित दोनों बन्धुओं से कहीं अधिक सचेत हैं। युक्ति तथा शाब्दिक बोध की दृष्टि से इन्हों ने प्रायः इस्लाम के अधिकांश मन्तव्यों को बड़ी खूबी से अपना लिया है, इस में किञ्चित मात्र सन्देह नहीं। परन्तु इस सत्य के प्रकट करने में जो अपूर्व उत्साह इनके पूर्व भ्राताओं ने प्रकट किया था, उसका इन में सहस्रांश भी उपलब्ध नहीं होता। यह इन की आन्तरीय आत्मिक शक्ति की न्यूनता का प्रबल प्रमाण है। पुनः इन्हों ने जिन शास्त्रों के आधार इस विषय का प्रतिपादन करने की चेष्टा की है, वे अक्षरशः इनका अनुमोदन नहीं करते। इस हेतु इनके इस विषय के मूल लेख ऊपरि दृष्टि से ठीक होने पर भी उनके दिये प्रमाणों से उपहास के योग्य ठहरते हैं। अतएव सुधार दृष्टि से यह सिख समाज, ब्राह्मो समाज के विरोधी, हिन्दू धर्म शास्त्रों के खुले परिवर्त्तन कर्त्ता, सनातन नाम धारी धर्मानुसार उस के नास्तिक शत्रु तथा मुस्लिम सिद्धान्तों के गुप्त चोर सिद्ध होते हैं। इस भाव से धारण योग्य वस्तु के सम्बन्ध में इनका कोई लेख विश्वस्नीय नहीं कहा जा सकता।

२—धारण योग्य वस्तु में विरोध—अब जिस धारण योग्य वस्तु को इन तीनों ने भिन्न २ नामों से वर्णन किया है, यदि हम उसके विस्तार में जायें तब तो यही लेख इतना लम्बा हो जावेगा कि सम्भवतः आपको दूसरे आवश्यकीय विषयों के देखने का अवसर भी प्राप्त न हो, इस लिये यहां पर आप उनके मूल नामों पर ही सन्तोष करें। सिखों का मुख्य नाम "ओङ्कार" ब्राह्मो समाज का कोई मुख्य नाम न होते हुए भी यथा नामः तथा गुणः के अनुसार "ब्रह्म"

नाम ही समझना योग्य है। आर्य्य समाजी उसी सत्ता का नाम ॐ, ओम् वा ओ३म् बताते हैं। इन तीनों का आपसी भेद इनके अपने २ तीन भिन्न नामों ही से प्रकट है। पुनः इन के अवान्तर भेदों का भी कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही होगा। यथा—सिखों के (गुरु सम्प्रदाय=वेदि सम्प्रदाय) में पहला नाम सिख, दूसरा ख़ालसा, फिर उसी ख़ालसा के "अमृती" तथा सहज धारी नाम से दो प्रमुख भेद हुए। फिर "अमृती" सिखों में सिंह, निहङ्ग, कूके (नाम धारी वा श्री गुरु अमर सिंह जी के विशेष अनुयाई) तथा निर्मले नाम से चार भाग हुए।

श्री राजा राम मोहन राय के ब्राह्म धर्म" वा ब्राह्म समाज के तीन भाग हुए। श्री देवेन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा उसका पहला नाम करण "आदि ब्राह्म-समाज" श्री केशव चन्द्र सेन के मत भेद से दूसरा नाम "भारत वर्षीय ब्राह्म समाज" तथा श्री शिव नाथ जी शास्त्री द्वारा तीसरा "साधारण ब्राह्म समाज" हुआ।

इसी प्रकार आर्य समाज में भी उस उपास्य देव की उपासना दृष्टि से उस में नाना भेद हुए। हमारी दृष्टि में इन समस्त भेदों का मूल कारण केवल अनुयाइयों का अपना साधारण अनुभूत हठ अथवा उनके सजातीय संस्कारों का वह प्रभाव था, कि जो उन्हें पुनः उनके हिन्दू पन की ओर लेगया। इस लिये आज ये अपने को हिन्दू न कहते हुए भी हिन्दुओं के निकट अहिन्दू तथा मुसलमानों के निकट पूरे हिन्दू समझे जाते हैं।

३—पूर्वजों से अविरोधाविरोध— हम समझते हैं, पहले पहल सुधारकों में जो ज्ञान बुद्धि तथा निःस्वार्थ उपकार भाव सहित पुरुषार्थ का अपूर्व बल था, उसका उनके अनुयाइयों ने ठीक २ उपयोग नहीं किया। यदि वे उस का उचित उपयोग करते तो आज भारत की हिन्दू मुस्लिम जनता में यह दुर्भाव उत्पन्न ही न होते कि यह धर्म देशी है, और यह विदेशी। सच पूछो तो इस देशी विदेशी के अधम धर्म भाव ही ने बहुधा अनुयाइयों को मूल सुधारकों के सत्य पथ से हटा कर सर्व साधारण हिन्दू जनता को पुनः उस पुरातन विरोध के गढ़े में ला डाला कि जिस से उन्हें उनके पूर्व सुधारकों ने बड़ी कठनाई से बाहिर निकाला था।

उदाहरण—इसका प्रत्येक्ष उदाहरण आप ऊपर युक्त एक ही "ओङ्कार" तथा "ओम्" वा "ओ३म्" नाम के मानने वाले तीन दलों में देख सकते हैं।

१—सिख—धर्म के उपस्थित अनुयाई "ओङ्कार" तथा "वाह गुरु" इन दो शब्दों को मिलाकर "शिरो मन्त्र सहित गायत्री" से तुलना करते हैं। इस भाव से "एक ओङ्कार सत नाम" से लेकर "नानक होसी भी सच्च" पर्यन्त को "गुरु मन्त्र" तथा "वाह गुरु" को "माला मन्त्र" कहते हैं। गुरु मन्त्र किसी को शिष्य बनाते समय उसके दक्षिण कान में फूंकते हैं। तथा "वाह गुरु" से माला आदि पर उसी "ओङ्कार" का जप वा स्मरण करते हैं। इसप्रकार वर्त्तमान सिख धर्म के प्रमुख आचार्य इस "ओङ्कार" की मुख्य महिमा दिखाने के लिये अपने "वाह गुरु" मन्त्र की निम्न प्रकार टीका करते हैं।

अर्थात्—वाह गुरु —के (व) वर्ण से वसुदेव, (ह) वर्ण से हरि, (ग) वर्ण से गोविन्द, तथा रकार (र) वर्ण से राम नाम का जप सिद्ध करते हैं।

२—आर्य—आर्य समाजी सिखों के ऊपर कथित ओंकार को न स्वीकार कर उसे "ओम्" वा विशुद्ध "ओ३म्" कहते हैं। तथा उसके निज महत्व को दिखाने के लिये उससे निम्न नामों का ग्रहण करते हैं।

यथा—ओम् वा ओ३म्—इस में अ, उ, म, तीन वर्ण हैं। इन तीनों से क्रमशः वे (अ) से विराट, अग्नि एवं विश्वादि (उ) से हिरण्य गर्भ, वायु तथा तैजसादि। (म) से ईश्वर, आदित्य तथा प्राज्ञादि नामों का ग्रहण करते हैं।

३—अब इसी "ओङ्कार" के विषय में इन दोनों से पूर्व उपनिषद कार ज्ञानियों का क्या मत है, जिसे ब्राह्म समाजी विज्ञ विशेष रूप से अधिक प्रमाण के योग्य समझते हैं, उसे भी यहां देख लीजिये।

"माण्डूक्य ऋषि" अपने स्वनामः "माण्डूक्य उपनिषद" में कहते हैं कि इस "ओम्" नाम में अ, उ, म ये तीन वर्ण हैं। एवं इन तीन वर्णों से निम्नाङ्कित तीन नामों का ग्रहण होता है। अर्थात्—(अ) से वैश्वानर (विराट)। (उ) से तैजस (हिरण्य गर्भ)। तथा (म) से प्राज्ञ (ईश्वर)। देखो ("जय संहिता" निखिल शास्त्र निष्णात श्री पण्डित स्वामी हरि प्रसाद जी वैदिक मुनि कृत टीका की भूमिका पृ० ३४—३६ तथा जय संहिता पृ० १, २०, २३। एवं बंगला सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास पृ० २। तथा माण्डूक्य उपनिषद पूरा)।

इस एक प्रत्येक्ष तुल्य नामः स्पष्ट उदाहरण से यह बात आपको अच्छी तरह समझ में आ सकती है कि उक्त मूल सुधारकों के ये मुख्य अनुयाई कितनी शीघ्रता के साथ उनके मुख्य सुधारों में पूर्वजों सहित अविरोधाविरोध के भागी हुए। यह उनके पुनः हिन्दू पन में जाने का खुला प्रमाण है। परन्तु उनके ऐसा करने पर भी मूल हिन्दुओं को उनके इस हिन्दूपन का पूरा विश्वास नहीं हुआ। इस हेतु इधर मूल सुधारों से गिरने के कारण ये विज्ञ मुस्लिम जनता की दृष्टि में उनके वैसे प्रेम पात्र न रहे, जैसे कि उनके मूल गुरु जन आज भी यथेष्ट सत्कार के योग्य समझे जाते हैं। दूसरी ओर हिन्दुओं ने भी इन्हें नवदीक्षित होने के कारण वैसा नहीं समझा जैसा कि वे उन्हें उनकी दीक्षा के पूर्व समझते थे। इस प्रकार ये मन मुखी अनुयाई अब दोनों ही की दृष्टि में प्रमाण कोटि से बाहिर समझे जाते हैं।

४—शास्त्रों में परिवर्त्तन—रहा सुधारकों के मूल सुधारों के सम्बन्ध में कि आया उनके वे सुधार उनके मूल शास्त्रों की अपनी भित्ति पर हुए हैं, व किसी अन्य भित्ति पर? इस विषय में जिन लोगों को उनके अपने शास्त्रों का पूरा ज्ञान है, वे इसे स्वीकार करने का कभी भी

साहस नहीं करते कि ये सुधार उनके मूल शास्त्रों के अपने आधार पर हुए हैं। कारण इन सुधारों का पहला हेतु इस्लाम का प्रचार, तथा दूसरा अंग्रेज़ी राज्य रक्षा का सुप्रबन्ध है। जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में आप इसे संक्षेप रूप से अच्छी तरह जान चुके हैं। पुनः यही बात आप उनके अपने २ उपस्थित साहित्य में भी देख सकते हैं। सिख धर्म का तो साहित्य ही निराला है, उसने तो स्पष्ट रूप से वेदादि को छोड़ अपना एक स्वतन्त्र धर्म ग्रन्थ पृथक ही बना लिया है। जिस में उनके अपने गुरु जन तथा अन्य अनेक मुस्लिम भक्तों सहित बहु मूल्य भूरि वाणियां सङ्कलित हुई हैं। तथा इस में वेदों से कहीं बढ़कर अनुकरणीय तथा पवित्र वाणी संग्रह मानते हैं। इन से उतर कर ब्राह्म समाजी हैं, यह केवल उपनिषद भाग ही को मानते हैं, वेदों को यह भी सिख समाज की भान्ति अनावश्यकीय साधारण पुस्तक संग्रह समझ कर छोड़ देते हैं। रहे आर्य समाजी, सो ये वेदादि शास्त्रों को जिस स्थिति से मानते हैं, वह वैदिक प्रमाणों से स्वयं भी सिद्ध नहीं। अतः अब ये तीनों ही जब कभी वेदों की दुहाई देकर किसी बात की घोषणा करते हैं, तब २ वेदों के उचित अनुयाई सनातन धर्मावलम्बी उन्हें तत्काल ही वेदादि शास्त्रों में परिवर्त्तन करने वाले कह कर शीघ्र ही चुप करा देते हैं। इधर इस्लाम को भी अब ये खुले बन्दों अपने सुधारों का मूल हेतु स्वीकार नहीं करते। इस लिये अब ये हिन्दुओं में वेदादि शास्त्रों में परिवर्त्तन कर्त्ता तथा सर्व साधारण मुसलमानों के निकट अहिन्दू होने पर भी हिन्दू मोह के पूरे पक्ष पाती गुप्त रूप से हिन्दू ही समझे जाते हैं।

५—मूल सुधारों की व्यक्तिगत स्थितियां-मूल सुधारकों की व्यक्तिगत स्थितियों (उनके रहन सहन तथा जन साधारण से उनके भाव पूर्ण निज व्यवहारों) का गहरा स्वाध्याय करने से पता चलता है, कि वे महाशय अपने सुधार सम्बन्धी उत्तम विचारों में ऐसे सङ्कीरण-भाव न थे, जैसा कि आज कल उनके हिन्दू भाव सम्पन्न हिन्दू रूपधारी नाम के अनुयाई उन्हें तोड़ मरोड़ कर प्रकट कर रहे हैं। सज्जनों! वे सच मुच ही अरब वासी सुधारकों का पूरा २ अनुसरण चाहते थे। परन्तु भारत के दुर्भाग्य वश उन्हें अरब वासी सुधार प्रिय अहिन्दू प्रचारक नहीं मिले, जो मिले वे समयानुसार नाम के अहिन्दू परन्तु भीतरी भावों में पूर्ण हिन्दू थे। तिस पर भी वे उनके निज प्रभावों से ऐसे प्रभावित थे कि वे अपने को खुले शब्दों हिन्दू कभी स्वीकार नहीं करते थे। अपितु उनकी दीक्षा के पश्चात् जब कभी कोई उन्हें हिन्दू कह कर सम्बोधन करता था, तब वे उस पर बिगड़ कर कहते थे "महाशय सावधान! हम हिन्दू नहीं, हिन्दू गारी है, आगे को आप हमें हिन्दू कभी नहीं कहना"। सम्भवतः ये बातें आपने उनके उपस्थित मुख्य लेखों तथा उनके लग्नवान् प्रचारकों के अनेक भाषणों में स्वयं भी देखी, पढ़ी, वा सुनी होंगी।

अब आप उनके इस प्रकार के इस असाधारण प्रभाव से उनकी अन्य व्यवहारिक बातों का भी अच्छी तरह अनुमान कर सकते हैं। कि आया उनके अपने २ प्रचारारम्भ काल में उनकी

अपनी २ व्यक्तिगत स्थितियां कैसी थीं ? जिन सब को भूल कर आज उनके अपने ही अनुयाई उन्हें स्वयं हिन्दू सिद्ध कर रहे हैं। सज्जनों ! यह कैसे आश्चर्य की बात है कि जिन सुधारकों के सम्मुख उनके साधारण अनुयाई भी अपने को हिन्दू कहते लज्जा मानते थे, आज उन्हीं के पूर्ण अनुयाई होने के पक्षपाती उन्हें स्वयं हिन्दू कह रहे हैं। इस प्रकार आप इस एक ही बात से उनके इस्लाम से प्रभावित होकर पूर्ण लाभ का उचित अनुमान कर सकते हैं।

६—कलह सहित घृणा—और जब तक वे अपने को खुल्लम खुल्ला अहिन्दू कहते व मानते रहे तब ही तक हिन्दू मुसलमान दोनों ही सम्मिलित रूप से इनकी बातों को सुनते तथा विचारते रहे, परन्तु जैसे हीं इन्हों ने स्वार्थ वश अपने को खुल्लम खुल्ला हिन्दू कहना आरम्भ कर दिया वैसे ही हिन्दू मुस्लिम दोनों इन से घृणा पूर्वक संदिग्ध होगये। इस प्रकार ये क्रमशः हिन्दू मुस्लिम ही में नहीं अपितु आपस में भी एक दूसरे के कलह पूर्वक पूरे घृणा के पात्र बन गए।

७—मूल सुधारकों के प्रति हमारी धारणा—परन्तु इन मूल सुधारकों के प्रति हमारी अपनी धारणा आज भी वैसी ही है जैसी कि आज से पूर्व उनके अपने २ समय के विशुद्ध भारतीय मुस्लिम विद्वानों की थी, अर्थात् जैसे वें उन्हें सर्व प्रिय इस्लाम मूलक सिद्धान्तों के स्वतन्त्र प्रचारक समझ कर उनकी हर प्रकार से योग्य सहायता करते तथा यथा शक्ति उनके प्रचार-कार्य्यों में भी उन्हें उचित योग प्रदान करते थे, वैसे ही हम भी उन्हें इस के योग्य समझ उनका हृदय से सत्कार करते हैं। परन्तु उनके उपस्थित अनुयाइयों के प्रति हमारी यह विशुद्ध धारणा नहीं, कारण इन में धार्मिक तत्व बोध की खोज वैसी नहीं जैसी उनके पूर्व मूल सुधारकों में थी। ये बहुधा सजातीय पक्षपात में अन्ध समान चलाने के हेतु हैं। इन में वह लग्न भी नहीं जो इनके अपने २ आदर्श सुधारकों में बाहुल्य रूप से विद्यमान था। उन्हों ने भारतीय जनता को अहिन्दू बनाने में जो यत्न किया, उसके विरुद्ध इन्हों ने अपने २ समूह को उसका अङ्ग विशेष बनाने में अधिक से अधिक चेष्टा की। इसका साधारण परिणाम यह हुआ कि जहां वे हिन्दुओं की मत संख्या को बल पूर्वक कम करना चाहते थे, वहां इन हिन्दू चलन प्रेमियों द्वारा इन तीन परस्पर विरोधी हिन्दू मतों की और वृद्धि हो गई। इस प्रकार पहिले हिन्दू मतों की संख्या पांच सहस्र ८२ होती थी पर अब इनकी इस कृपा से उनकी पूर्ण संख्या ५ हज़ार ८५ हो जाती है। यह इनका हिन्दू धर्म पर अपकार है वा उपकार ? इसे आप स्वयं ही विचार करें।

८—इस्लामी उदारता—अब जगत विख्यात भारतीय सम्प्रदायों का यह प्रसिद्ध मत है कि मूलतः ये तीनों मत ईसाई, मुस्लिम तथा समूह रूप हिन्दू धर्म के मुख्य रीति रिवाजों के विरुद्ध खड़े हुये थे, परन्तु आगे चलकर इन्हें जैसा चाहिये था वैसी सफलता प्राप्त नहीं हुई। अतः

अब आप इन्हें जहां देखते हैं वहां पहुँच कर ये एकदम स्वयं ही रुक गये। अब केवल इनके मूल प्रचारकों के नाम ही शेष हैं, उनके मूल सिद्धान्त क्या थे? इस का भी अब विना श्रम विशेष कोई व्यक्ति सरलता से पता नहीं लगा सकता।

इस प्रकार हिन्दू सम्प्रदाय इन्हें जो भी समझें, उन्हें पूर्ण अधिकार है, परन्तु लोक प्रसिद्ध अनुभवी मुस्लिम, ब्राह्म समाज को छोड़ शेष दो को उपस्थित इस्लाम के खुले विरोध प्रदर्शक समझते हुए भी तीनों को इस्लाम से प्रभावित हिन्दी आस्तिक वाद के असाधारण प्रचारक मानते हैं, यह इस्लामी उदारता का एक ऐसा प्रत्यक्ष उदाहरण है कि जिसकी उपमा आप संसार के प्रचलित धर्म सङ्घों में कहीं भी नहीं पायेंगे, कारण इस्लाम मूलक श्री क़ुरान का यही एक अपूर्व आदर्श है कि मनुष्य ईशातिरिक्त किसी की भी कोई पूजा वा वन्दना न करे, क्यों कि ऐसा करने ही से वह क्षमा के योग्य नहीं रहता देखो (क़ुरान ५।१५)। अतः श्री क़ुरान के इस कथनानुसार उन्हों ने भरसक एक ईश्वरवाद तथा उसकी भूली हुई अनमोल वन्दना का जो भी प्रचार किया, वह अवश्य मेव न्याय पूर्वक हम आस्तिकों को उनसे तथा उन्हें हमसे निकटतम कर देता है। यद्यपि उनका यह विषय जैसा चाहिये वैसा स्फुट नहीं, तथापि जहां कुछ था ही नहीं वहां प्रभु कृपा से इतना भी आस्तिकों के लिये अतुल्य फल का हेतु हो सकता है। यह आप श्री क़ुरान के दूसरे स्थल २४।३—में "क़ुल-से-रहीम पर्यन्त" देखें।

आशा है पाठक इन थोड़ी सी उपयोगी युक्ति युक्त युक्तियें तथा प्रत्येक स्थल के मूल प्रमाणों को ध्यान पूर्वक मनन करके इसे समझने की चेष्टा करेंगे कि "भारतवासियें ने मूल इस्लाम से कैसे लाभ उठाया"।

किन्तु वे हठीले अरबों के सदृश सरलता पूर्वक अपनी हार्दिक कृतज्ञताओं का सुस्पष्ट प्रकाश नहीं चाहते। इनकी सम्मिलित संख्या २१, ६१, २०८ है। इनके अतिरिक्त भारत के नव्यागत ऐंगलो इंडियन सहित ख्रिस्ती, यहूदी तथा प्रसिद्ध ईरान देशीय पार्सी, ये तीनों ही इस्लाम से पूर्व परिचित तथा प्रदेशी हैं। इनकी मोट संख्या १, ०१, ०२, ४१८ है। इनके उपरान्त भारत की वे जंगली जातियां जो आज पर्यन्त प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य भक्षण पर ही निर्वाह करती हैं तथा दूसरे वे लोग कि जिन्हें धर्म्म कर्म की कोई सुध ही नहीं है, इन सबकी संख्या इस प्रकार है। ८६, १४, ७४८+१,०१,०२,४१८+२१,६१,८०८= २,०६, ०८, २७४ इनको बाद देकर शेष—निम्नांकित सम्प्रदायों में समयानुसार प्रेम पूर्वक प्रचार की अधिक आवश्यकता है। यथा—१,०८, १०, ६०७ जैन तथा बौद्ध, नास्तिक सम्प्रदायों में। ७ कोटि पाषाण पूजक हिन्दू धर्मावलम्बी द्विज मात्र में। तथा ७ कोटि मूल भारत के धर्माधिकार वंचित, अग्रसरों के कोप पात्रों में।

अग्रसरों के कोप पात्र

हिन्दू दृष्टि से धर्माधिकार वंचित अग्रसरों के कोप पात्रों से अभिप्राय यहां उन १५ कोटि मूल भारत वासियों से है जिन्हें आज भी हिन्दू, जैन आदि प्रमाणिक धर्म ग्रन्थों में कारु, अकारु, अस्पृश्य, अपकृष्ट, अवेद, अवर वर्ण, वृषल, जघन्य, जघन्यज, दास, अनार्य, अनाड़ी, पादज, चरणज, उजूल, अनुलोम, प्रति लोम, वहिष्कृत, अवहिष्कृत, वर्णाधम, एक जाति, अन्त्यज, इत्यादि घृणा पूर्ण नामों से सम्बोधित किया गया है, तथा किया जाता है। सभ्य शब्दों में यही हरिजन, अचरणीय, अछूत, अजलचर, अति शूद्र, अछूत शूद्र, अस्पृश्य तथा दलित भी कहे जाते हैं।

इतिहास, पुराणों में इन्हीं का एक नाम निषाद, (पंचम वर्ण) भी आया है। वेदों में यही यज्ञ विरोधी, अयज्वान्, सनक, व्रतहीन, काले रङ्ग वाले, अनथवादी, आक्रमणकारी, घमण्डी, राक्षस, ब्रह्मद्वेषी, क्रव्याद, घोर नेत्र वाले, क्रूर बुद्धि, राक्षस वंशी, दस्यु, अनार्य, कीकट देशीय, दास, यातुधान, दैत्य, दानव, असुर, स्पर्धमान तथा अराव्णादि शत्रु भाव सम्पन्न नाना नामों से स्मरण किये गये हैं।

इन के इसी देश का पहला नाम ऋग्वेद ७।२०।२ में "अहवाउ लोकं" करके आता है। अर्थात् यज्ञ हीन लोक वा यज्ञ हीन देश। पहले ये समूह रूप से वेद, उस की देव पूजा आदि के कट्टर विरोधी थे। अग्रसर आर्य्यों ने इन्हें अपने देव नामक बली लोगों की पूर्ण सहायता से क्रमशः ऐसा बना दिया, जैसा कि आज आप इन्हें स्वयं देख रहे हैं। पहले यही लोग इस देश के पूर्ण अधिपति थे। यह आप अब भी उपस्थित वेदों में स्वयं देख सकते हैं। रहा इनका मनुष्यता रहित दीन, हीन शूद्र सन्तान बनाया जाना, सो यह आप हिन्दुओं के बहु मूल्य प्रसिद्ध धर्मशास्त्र मनु ८/४१५ में देखें। यहां उनके पूर्वजों को किन २ उपायों से शूद्र बनाया गया है, यह आप उनके अपने इन कल्पित नामों से अच्छी तरह अनुभव करें।

उपस्थित ७ कोटि व १५ कोटि शूद्रों में से—१—कुछ लोग ऐसे भी हैं कि जिनके पूर्वजों को युद्धों में जीता गया है। २—कुछ ऐसे हैं कि जिनके पूर्वज भूखों मरने के भय से प्राण रक्षा के हेतु स्वयं दास बन गये। ३—कुछ के पूर्वज अग्रसरों की दासियों से उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। ४—कुछ के पूर्वजों को अग्रसरों ने दाम देकर मोल लिया है। ५—कुछ के पूर्वज अग्रसरों को दान में भी मिले हैं। ६—कुछ के पूर्वज ऐसे भी थे जो अग्रसरों को बपौती में प्राप्त हुये। ७—तथा कुछ के पूर्वज ऐसे भी वर्णित हुये हैं कि जिन्हों ने राज दण्ड के भय से दासता को स्वयं स्वीकार कर लिया था।

इस प्रकार इन उपस्थित समस्त शूद्रों को आप उनकी सन्तान समझें, कि जो पहले इस "अहवाउ" देश के मुख्य राज भुक्त तथा आदिम शासक थे । यह आप वेदों के ऊपर युक्त आक्रमणकारी, कीकट देशीय, तथा स्पर्धमानादि सहित मनु महाराज के इस "ध्वजा हृता" आदि मौलिक शब्दों से बोध करें । एवं इन्हीं के अनुमोदन रूप मनु ४।६१ को भी अवश्य देखें। जहां शूद्र राज्य का स्पष्ट वर्णन आया है । आखिर मनु के समय यह शूद्र राज्य कौन सा था ?

धर्माधिकार वञ्चित दुःखिया हरिजनों के
प्रति
उपस्थित हिन्दू, जैन आदि शास्त्रों की शोचनीय व्यवस्था

अब क़ुरान पाठी सज्जनों को यह भी देख लेना चाहिये कि इन दुःखिया हरिजनों के प्रति उनके आगन्तुक हिन्दू आर्य्यों तथा इसी देशोत्पन्न जैन धर्म शास्त्रों के निज मत क्या हैं ? कारण आज ये दोनों ही भारत के प्रमुख धर्म रक्षक तथा पुरातन धर्म पथ प्रदर्शक होने के पूर्ण पक्षपाती हैं। इन दो को छोड़ शेष सभी इनके निकट नवीन तथा अधूरे माने जाते हैं। इधर हरिजन भी प्रायः इन्हीं दो से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। जिन लोगों को धर्म शास्त्रों का अच्छा ज्ञान है, वे जानते हैं कि हिन्दू अपने को पहले तथा जैन को उनकी अपनी शाखा मानते हैं। इसी प्रकार जैन अपने को मूल तथा हिन्दुओं को उनकी अपनी अर्वाचीन शाखा कहते हैं। इन दोनों में कौन पहले, तथा कौन पीछे है ? इस बात को हमने इसके पश्चात् आने वाले दूसरे प्रकरण के लिये उठा रखा है, इसका विशुद्ध निर्णय आप वहां पायेंगे। इस स्थल पर केवल उपस्थित शूद्र जातियों के सम्बन्ध में इन के निज शास्त्रों की क्या २ व्यवस्था है, इसे आप यहां ध्यान पूर्वक अवलोकन करें ।

१—हिन्दू, जैन दोनों शास्त्रों के आधार हरिजन, धर्माधिकार वञ्चित, अधम लोग हैं। दोनों के मत में ये शूद्र नामक समस्त जातियां ब्रह्म (श्री ऋषभदेव) जी द्वारा उत्पन्न हैं । देखो आदि पुराण पर्व १६ श्लोक १८३ । पर्व ६ श्लोक १८५ । पर्व १६ श्लोक १८६। एक सन्धि जिन संहिता पर्व १७ श्लोक २१ ।

२—इन हरिजनों का वैदिक नाम शूद्र है । यह शूद्र नाम ऋग्वेद में एक बार, यजु में दश बार तथा अथर्व में सात बार आया है।

३—यह शूद्र, ब्रह्म (व ऋषभ देवजी) के पैरों से उत्पन्न हुआ है। देखो ऋ० १०/६ ।१२, यजु० ३१/११, अथर्व० १६/६/६, आदि पुराण पर्व १६ श्लोक १८३ तथा मनु० ८/४१५ में इसी की उत्पत्ति सात प्रकार से वर्णित हुई है, जैसा कि अभी आप ऊपर देख चुके हैं।

४—यह शूद्र तप पूर्वक आजीविका लाभ करे। यजु० ३०।५

५—इसे धन संचय नहीं करना चाहिये। मनु० १०/१२६

६—यदि धन संचय करे तो राजा उसे छीन कर इसे देश से निकाल देवे। मनु १०।६६

७—यह "अरावण" पटकने योग्य है। ऋ० ६।६३।५

८—दूसरी द्विजातीयों की अपेक्षा इस से "चारगुणा अधिक" व्याज लेना चाहिये। मनु। ८।१४२

९—कोई शूद्र किसी राज्य में "न्यायाधीश" न हो। मनु० ८।२०—२१

१०—यह शूद्र यदि किसी समान आसन पर बैठ जावे तो राजा उसके "चूतड़" कटवा कर उसे देश से निकलवा दे। मनु० ८।२८१

११—दुर्भाग्यवश यदि शूद्र धनी भी हो तो उसे योग्य है, कि वह द्विजों ही के "पैर धोये"। पञ्च विंश ब्राह्मण ३।१।११

१२—शूद्र को कपिला गौ के दूध पीने तथा वेद पाठ से "नरक" होता है। इस लिये दोनों से "वञ्चित" रहे। पराशर स्मृति १।७३

१३—शूद्र यदि आर्यों का सा कोई "कर्म" करे भी तो उसे उससे कोई "लाभ नहीं" मनु०। १०।७३

१४—यह शूद्र केवल "दासता" के लिये ही उत्पन्न हुआ है। मनु० १०।४१३ व ४१४

१५—उसकी इस "दासता के बदले" उसे बची हुई जूठन, फटे पुराने कपड़े, धान्य की पछोड़न, तथा पुराने भाण्डे देने चाहिये। मनु० १।१२४ व १२५

१६—शूद्र को बुद्धि, यज्ञ का शेषभाग तथा धर्म का कोई उपदेश न देवे, यदि जान बूझ कर कोई ऐसा करे, तो वह करनेवाला "नरक" को जावेगा। मनु० ४।८० व ८१

१७—शूद्र के मार डालने में उतना ही पाप होता है, "जितना" कि किसी एक बिल्ली, नेवला, चिड़िया, मेंढक, कुत्ता, गोधा, उल्लू तथा कौआ के मार देने से होता है। मनु०११।१६

१८—यदि इस शूद्र के पास कुछ भी "पूँजी" हो, तो उसे ब्राह्मण "निर्भय" होकर ले लेवे। मनु० ८।४१७

१९—२४—यदि यह शूद्र द्विजाति ब्राह्मणादि को कोई लगने वाली बात कहे, तो उसकी "जीभ" काट दो, यदि उन के व्यक्ति-गत नाम लेवे अथवा उनकी जातियों के नाम उच्चारण करे, तो उसके "मुख" में "दश" अंगुल की जलती हुई कील ठोंक दो, अहंकार से ब्राह्मण को उपदेश करे, तो राजा उसके "मुँह, कान" में "गरम तेल" डलवा देवे, उच्च जातियों के संग "बैठना" चाहे तो राजा उसकी "कमर" दाग़ कर उसे देश से निकाल दे, अथवा उसके "चूतड़" कटवा दे। मनु० ८।२७०—२७१, व २७२—२८२

२५—२७— यही शूद्र यदि वेद सुन पावे, तो उसके "कानों" में पिघला हुआ सीसा तथा लाख भरवादो, स्वयं उच्चारण करे, तो "जिह्वा" कटवा दो। मन में स्मरण करे, तो "जान" से मरवा दो। गौतम धर्म सूत्र १२।४

२८—कोई शूद्र "शुभ कर्म" न करे, यथा—जप, होम आदि, यदि करे तो राजा उस "राज्य नाशक" को कठोर दण्ड देवे। (इसका दुःख दाई उदाहरण आप वाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ७३—७६ में "श्री राम चन्द्र" जी का तथा महाभारत आदि पर्व अध्याय १३४ में "दुर्णाचार्य जी" महाराज का देख सकते हैं। पहले ने एक "तपस्वी शूद्र" को जान से मार दिया तथा दूसरे ने एक "धनुष बाण निपुण निषाद" का अंगूठा कटवा दिया था।) अत्रि स्मृति० ६

२९—३४—**छे शुभ कर्मों का निषेध**—स्त्री, शूद्र, "दोनों" ही जप, तप, तीर्थ यात्रा, सन्यास ग्रहण, मन्त्र साधन तथा देवता आराधन ये "छे शुभ कर्म" न करें, यदि करेंगे तो और भी "पतित" होंगे। अत्रि १३३—१३४

३५—३८ **पुरातन मर्यादा**—मरे शूद्र के शव को न छुए, न दाह करावे, न उसके संग जावे, यदि उसे "आँख" से देख लेवे, तो सूर्य दर्शन से "शुद्धि" करावे। यह "धर्म की पुरातन मर्यादा" है। पराशर स्मृति ५५।५०

३९—ब्राह्मण "दुश्चरित्र" होने पर भी पूज्य है, परन्तु शूद्र "जितेन्द्रिय" भी पूजा का पात्र नहीं। पराशर ८।३३।

४०—शूद्र "द्विज सेवा" छोड़ "अन्य कर्म" करने से अल्पायु तथा नरक गामी होता है। पराशर २।१६—२०

४१—४९—**कुचलने योग्य पदार्थ**— ऊख, तिल, "शूद्र" स्त्री, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही, पान, "ये सब" कुचलने ही से अधिक लाभ देते हैं। चाणक्य नीति दर्पण ६।१३

५०—शूद्र "ज्ञान, गुण प्रवीन" होने पर भी पूज्य नहीं। विप्र "शील गुणहीन" होने पर भी पूजा का पात्र है। तुलसी कृत रामायण।

५१—५५—**पिटने के अधिकारी**--ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी। "ये सब" पिटने के अधिकारी॥ तुलसी कृत रामयण।

५६—५९—**शूद्र लतियाने योग्य है**—ठाकुर विनती से मानते हैं, ब्राह्मण खाने से, कायस्थ कुछ लेने देने से, तथा शूद्र "केवल लतियाने" ही से मानता है। लोकोक्ति

६०—**शूद्र वशी करण मन्त्र**—पारस्कर गृह्य सूत्र कां० ३ कं ७ में शूद्र के वशीकरण का एक "अद्भुत मन्त्र" दिया है, जिसका भावार्थ इस प्रकार है, कि जब दास शूद्र "सोया" हुआ हो, तब मरे पशु के सींग में अपने मूत्र को भर कर उस "सोये शूद्र" के गिर्दा गिर्द घूम २ कर उस मूत्र को यह कहते हुये छिड़के। "जिस पर्वत से तू जन्मा है, उस से मैं

तुझे तेरे माता पिता, बहिन, भ्राता तथा तेरे समस्त इष्ट मित्रों से विछोड़ता हूँ, अब तू कहीं नहीं जा सकेगा, कारण तेरी चारों ओर "मन्त्र पूर्वक" यह सूत्र छिड़का गया है।" (यह वशी करण मन्त्र ऐतिहासिक खोज की दृष्टि से शूद्रों के रहन सहन, उनके मुख्य निवास स्थान तथा उनके इष्ट मित्रों से उन्हें जुदा कर कैसे बन्द किया जाता था, इस पर अच्छा प्रकाश डालता है, देखो पारस्कर गृह्य सूत्र कां० ३ कं० ७)।

६१—**शूद्र अन्न रुधिर है**—ब्राह्मण का अन्न "अमृत" तुल्य, क्षत्रिय का दूध के तुल्य, वैश्य का अन्न, अन्न के समान, तथा शूद्र का अन्न निश्चय ही "रुधिर" तुल्य है। अंगिरा स्मृति श्लोक० ५६

६२—इन चाण्डालादि को यदि "खाने की कोई वस्तु" दी भी जावे तो, वह "मन्त्र रहित" बलि होनी चाहिये। जो पतित, पाप रोगी, कुत्ता, कौआ तथा "कीड़ों" को दी जाती है। मनु० ३

६३—**नीच का भोजन कर लेने पर प्रायश्चित्त**—कारु, चाण्डाल, तथा तुरुष्क (तुर्क=मुसलमान) इन "नीच" जातियों के घरों में भोजन कर लेने पर निम्न प्रकार का प्रायश्चित्त कर, करा कर "शुद्धि" लाभ करे। ३० उपवास, ५० एक भुक्ति (एकाशन), २०० भुक्ति (सजाति को) भोजन देवे, ३० गायें, ५ कलश अभिषेक, २० पंचामृतों के अभिषेक, १०० मोक कुला, २० पल श्री खण्ड, ५००८० फूल, ५ तीर्थों की यात्रा, २० निष्क (मुद्राविशेष= अशर्फियां) संघ पूजा में 'बुद्धिमानों को दान कर "शुद्धि" कराए। प्राय० चू० पृ० १४४। श्लोक १०६ व १०७

६४—**ये अस्पृश्य लोग**—क्षय, प्लेग, आदि "संक्रामक व्याधियों" से ग्रस्त की भांति "स्पर्श के योग्य नहीं"। अन्त्यज धर्म मीमांसा पृ० ६५

६५—ये सब "नगर के बाहिर" वास करें आदि पुराण पर्व १६ श्लोक १८६

६६—७५—चाण्डाल के "भूषण" लोहे, सीसे के हों, इन का "कर्म" नगर का मल उठाना, ये "पात्र रहित" हों, कुत्ते, गधे इनकी "सम्पत्ति" हो, पहरने को "मुर्दे का कफ़न" हो, इनके "खाने के बर्तन" टूटे फूटे ठीकरे हों, लोहे के आभूषण पहरें तथा "एक स्थान" में वास न करते हुए सदा "घूमते" रहें। कोई धर्मात्मा उन से "बात न करे" रात्रि के समय "नगर" में न घूमें। राजा की आज्ञानुसार बध्य मनुष्य को फांसी देवें, उसके वस्त्र, शय्या तथा आभूषण ये लोग ले लेवें। औशन स्मृति

७६—८८—**१३ अन्त्यज जातियां**—अत्रि स्मृति, यम स्मृति, अंगिरा स्मृति में सात, तथा व्यास स्मृति में इन १३ जातियों को अन्त्यज कहा गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं।

चमार, भट, भील, धोबी, पुस्कर, नट, वराट, मेद, चाण्डाल, दास, श्वपच, कोली, तथा गायें खाने वाले।

८६—**स्पर्श वर्जन का परिमाण**—ऊपर युक्त ग्रन्थों के आधार इन के स्पर्श वर्जन का परिमाण भी देख लीजिये। साधारण शब्दों में "स्पर्श" का अर्थ छू जाना होता है, परन्तु हिन्दू शास्त्र इस साक्षात् स्पर्श को ऐसा नहीं मानते। उनकी धार्मिक दृष्टि से यह स्पर्श २४ पग की दूरी से लागु समझा जाता है, जैसा कि अत्रि स्मृति, बृहस्पति स्मृति, तथा केरल देशीय "प्रायश्चित्त विवरणी' आदि ग्रन्थों में लिखा है कि अस्पृश्य चाण्डालादि से स्पर्श रक्षा के लिये कम से कम १२ हाथ की दूरी से, तथा अधिक से अधिक २४ क़दम की दूरी से स्पर्श को रोकना चाहिये। अर्थात्—इन ऊपर कथित १३ प्रकार के हरिजनों से स्पर्श दोष रक्षा के लिये इतना दूर रहना आवश्कीय है। अन्यथा द्विजाति हिन्दू, जैन दोनों ही इस स्पर्श दोष के भागी होंगे। नाना स्मृति

६०—**अस्पृश्य द्रव्य**—न छूने योग्य वस्तुएँ—मल, मूत्र, व चाण्डालादि से छुआ पदार्थ, उच्च वर्णों के काम का नहीं। यथा—मिट्टी आदि के बासन। ने० त्रिवर्णाचार

६१—शूद्र "आसुरी" सम्पत्ति वाला तथा ब्राह्मण "दैवी" सम्पत्ति वाला होने ही से ब्राह्मण को यज्ञाधिकार है, एवं शूद्र को नहीं। तैत्तिरेय संहिता ७।१।६ तथा उसका ब्राह्मण १।२।६।७ व १।२६।७

६२—इसी हेतु "देवता" गण भी ब्राह्मण से बोलते हैं, शूद्र से नहीं बोलते। जैमिनीय सूत्र १।६।३३ तथा शत पथ ब्राह्मण ३।१।१।१०

६३—इस से वेदों तथा जैन धर्म शास्त्रों का अधिकार केवल "द्विजों" ही को है, शूद्रों को नहीं। वेदान्त सूत्र १।२।३७—३८ तथा यशस्तिलक ३० पृ० ३१ व प्राय० चू० पृ० १४४ श्लोक १०६ व १०७

६४—यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि जन्म से सब "शूद्र" हैं, संस्कार ही से द्विज होते हैं। परन्तु शूद्र का जब जनेऊ ही नहीं तो उसका "संस्कार" कैसा ? आज कल के जो सुधारक इनके संस्कार के पक्ष में हैं, उन्हें हिन्दू, जैन के इस विरुद्ध पक्ष को भी देखना चाहिये, कि "चाण्डालादि के "सैकड़ों" संस्कार होने पर भी वे द्विज नहीं बन सकते"। देखो यशस्तिलक ३० पृ० ३१

६५—अब जब कि जनेऊ ही नहीं तब "धर्म श्रवण" का अधिकार कैसे ? देखो प्राय० चू० पृ० १४४ श्लोक १०७, नेमिचन्द्र प्रतिष्ठा तिलक तथा सागर धर्मामृत।

६६—आप ऊपर स्त्री, शूद्र दोनों ही को एक कोटि के शुभ कर्म हीन देख, पढ़, व जान चुके हैं। अब उसी स्त्री की शूद्र वत भिन्न २ संज्ञाओं को आप यहां और अवलोकन करें।

रजस्वला स्त्री की पहले दिन की संज्ञा "चाण्डाली" दूसरे दिन की संज्ञा "ब्रह्मघातिनी" तथा तीसरे दिनकी संज्ञा "रजकी" है। देखो त्रिवर्णाचार, नेमिचन्द्र प्रतिष्ठा तिलक तथा सागर धर्मामृत

६७—अब इस स्त्री नामधारी अबला तथा चाण्डाल नामधारी अन्त्यज व हरिजन इन अग्रसरों के कोप पात्र दोनों भारतीय दुःखियों का हिन्दुओं में क्या गौरव है, यह आप हिन्दू, जैनों के प्रत्येक पण्डित से स्वयं जिज्ञासा कर सकते हैं। चाण्डाल के सम्बन्ध में पराशर स्मृति अध्याय ४ में लिखा है कि यदि यह किसी द्विज के घर कुछ देर छिप कर रह जाये तो उस घर को ही आग लगा दो। पुन:

६८—सवर्ण स्त्री तथा शूद्र दोनों ही मूर्त्ति स्पर्श के अधिकारी नहीं।

नारदीय, निर्णय सिन्धु: तथा त्रिवर्णाचार, अन्त्यज मीमांसा पृष्ठ ४८ सहित

६६—**स्त्री शूद्र दोनों ही धर्म वंचित हैं**—"अन्त्यज धर्म मीमांसा" नामक पुस्तक के पृष्ठ ३७ में एक प्रमाण दिया है जो यहां उद्धृत करता हूँ।

"एवं स्त्री शूद्र पतनानि षट। प्रति लोमास्तु सर्व धर्म हीना:।
सर्व धर्म वहिष्कृता:।"

इस उद्धरण में स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया गया है, कि स्त्री शूद्र दोनों ही "सर्व धर्म हीन तथा सब धर्मों से बाहिर किये गये हैं"। यहां स्त्रियों से समस्त सवर्ण स्त्रियां तथा शूद्र से प्रतिलोम=हरिजन मात्र का ग्रहण है।

१००—**अन्तिम निर्णय**—यहां तक हिन्दू धर्मानुसार जो कुछ भी वर्णन किया गया है, वह केवल प्रसिद्ध दलित जातियों व हरिजनों सहित सवर्ण स्त्री मात्र ही का वर्णन था कि इन्हें धर्म में कोई अधिकार नहीं। इसके उपरान्त उन मुख्य जातियों का दिग्दर्शन कराया जाता है, कि जिन्हें हिन्दू धर्म शास्त्र तो शूद्र ही मानते हैं, परन्तु सुधारक लोग उन्हें छूत शूद्र कहकर द्विजाति हिन्दुओं में सम्मिलित करने की अधिक चेष्टा करते हैं। कतिपय लोग इन्हें जनेऊ भी देते हैं परन्तु बहुधा जनेऊ न लेकर भी अपने को वैश्यादि द्विजातियों में सम्मिलित समझते हैं। ऐसे समस्त लोग सर्व सम्मति से जल चल शूद्र अर्थात द्विजों के खाने पीने के बर्तन ही को छू सकते हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्म शास्त्रों की रू से द्विजाति धर्मों में उन्हें भी कोई अधिकार नहीं। ये सब जनेऊ रहित पिछड़ी जातियां व सत शूद्र छूत कहे जाते हैं। प्रस्तुत समय में दलित जातियों को ये भी वैसे ही घृणा पात्र अछूत मानते हैं, जैसा कि अन्य द्विजातियाँ इन्हें धर्मानुसार घृणा का पात्र मानती हैं। इनमें उनमें भेद इतना ही है, कि पहले शूद्रों को "अति शूद्र" तथा इनको "सत शूद्र" कहते हैं। शूद्र शब्द में दोनों ही समान धर्माधिकार वंचित हैं। इस से ये दोनों तथा भारत की स्त्री मात्र समान रूप से ही धर्माधिकार शून्य सिद्ध होते हैं, ऐसा आप भारत के मुख्य हिन्दू, जैन नामक प्रसिद्ध धर्मों का अन्तिम निर्णय समझें।

१०१—**इनकी मुख्य जातियां**—अब इन दोनों भारतीय नाम मात्र के दुःखिया मनुष्यों की प्रसिद्ध जातियां कौन २ सी हैं ? यह आप यहाँ और अवलोकन करें।

(क)—**७ करोड़ की संख्या वाली दलित जातियां**—इन अति शूद्रों की प्रसिद्ध जातियां इस प्रकार हैं।

अरख, मोची, भर, भगत, जोरिया, कोल, खरवार, घासिया, पठारी, बयार, मीना, खांगर डलेरा, बरयाड़, भन्तू, सांसी, कपड़िया, धोबी, रङ्गसाज़, कोरी, बलाई, सैकलगर, अहेरिया, बहेलिया, नट, बेड़िया, धानुक, दुसाध, संकर, खटीक, पासी, तरमाली, बंसफोड़, धरकार, हाबुड़ा, चमार, घरामी, अगरिया, जटवा, जैसवारा, मुसाहर, कंजर, धांगर, कोरवा, सहरया, भंगी, बलाहर, बसोड़, डोमर, डोम, डफ़ाली, आतशबाज़, दोगला, भील, संथाल, भोपा, भोभा, पंखिया, बाड़िया, पोतगर, इत्यदि। इनकी मोट संख्या प्रायः सात करोड़ है।

(ख)—**८ करोड़ की संख्या वाली पिछड़ी जातियां**—यह ऊपर युक्त अति शूद्रों से कुछ ऊपर द्विजाति हिन्दुओं के छूत शूद्र कहे जाते हैं। परन्तु शास्त्रीय शुद्रत्व की नीचता में ये दोनों ही समान हैं। इनकी मुख्य जातियां इस प्रकार हैं। अहीर, गड़रिया, जाट, कुर्मी, काछी गूजर, कंबोह, विशनोई, किरार, भरतिया, सुनार, कसेरा, अतित, महन्त, साध, माली, सानी, कलवार, तेली, मुराइ, कोइरी, लोध, तम्बोली, वरई, बढ़ई, लोहार, नाई, बारी, कहार, गोंड, गोड़िया, कमकर (कर्मकर या कर्मकार), बरगाही, हलवाई, भुजवा, कांदू, डंगी, रार, मल्लाह, केवट, मिंड, सोरहिया, कटेरा, छीपी, पटवा, दरज़ी, खेजधारी, व्रजवासी, कुम्हार, मनिहार, भाड़, लखेरा, थारू, भोगसा, भोटिया, सौन, बंजारा, नायक, बेलवार, कूटा, ओढ़, रमैया, इत्यादि।

इस प्रकार इन दोनों की पूर्ण संख्या १५ कोटि तथा सवर्ण स्त्री मात्र ये सब जनेऊ रहित हैं, जो हिन्दू धर्म का पहला अधिकार है।

१०२—**धर्माधिकार में घिनौनी कल्पनायें**—इस मिथ्या धर्माधिकार के नाम से हिन्दू शास्त्रों ने अपवित्रता की कैसी २ दुर्भाव युक्त घिनौनी कल्पनायें की हैं ? यदि यहां उन सबको उद्धृत किया जावे, तो सम्भवतः आज कल के शिक्षित जगत के विचार शील हिन्दू उन्हें धर्म के नाम से कभी भी स्वीकार न करेंगे। परन्तु धर्माधिकारियों को चूँकि अपना प्रभुत्व जमाना था, इस लिये उन्हों ने आज भी उन्हीं बातों को धर्म का मुख्य अङ्ग कह कर सर्व साधारण में शास्त्रों की दुहाई दे रखी है। उदाहरण के लिये दो एक स्थलों को आप यहां भी देख सकते हैं।

क—**मत्स्य सूक्त**—"यज्ञो पवीत हीनेन देवी शृणु महेश्वरी,
अन्नं विष्ठा समं तस्य जलं मूत्र समं।
तत्कृतं तस्य वा श्राद्धं सर्वं संयात्यधोगतिम्। (मत्स्य सूक्त)

१—३—**अधोगति के कारण**—श्री महादेव जी, पार्वती जी से कहते हैं कि हे महेश्वरी सुनो ? जनेऊ रहित द्विजाति का अर्पण किया हुआ अन्न "विष्ठा" के समान है, उस का जल, "मूत्र" के समान, तथा उसका किया हुआ "श्राद्ध" ये सब अधोगति को ले जाने वाले होते हैं।

ख—नारद संहिता—यज्ञो पवीत—संस्कार विना येहि द्विजातयः,
पादोदकं सुरा तुल्यं कर्पटं तुलसी दलं ।
काक विष्ठा समं तस्य पिण्डदानं पितुर्मुखे,
गो मांसं भोजनं तस्य जलं शूकर रक्तवत्। (नारद संहिता)

१—५—**धर्म नाश के मुख्य हेतु**—श्री नारद मुनि कहते हैं कि जनेऊ रहित द्विजातियों का दिया हुआ चरणोदक "मदिरा" के तुल्य है। तुलसी पत्र "कर्पट" के समान। पिंडदान, उसके पिता के मुख में "काक विष्ठा" के समान है। उसके यहां का भोजन "गोमांस" के समान तथा उसके यहां का जल "सूअर के रक्त" के समान है। जनेऊ धारियों के पक्ष में ये जनेऊ पक्षी महाशयों के निकट बड़े महत्व के प्रमाण समझे जाते हैं। इसी प्रकार और भी अनेक स्थल दिखाये जा सकते हैं, जिनमें जनेऊ रहित होने से द्विज शूद्रों से भी बत्तर ठहरते हैं।

१०३—**वर्णाश्रम के ढोल की पोल**—इन वर्णाश्रमी हिन्दू आर्य्यों ने अपने बड़ापन के घमण्ड में आकर वर्णाश्रम धर्म के नाम से मूल भारत वासियों पर जो २ अत्याचार किये हैं, उनका स्मरण हो आने पर कलेजा मुख को आता है। ऊपर युक्त पंक्तियों से आपको ज्ञात हो गया होगा कि इन्हों ने जनता की आंखों में धूल झोंक कर अपने मूलक नवीन वर्णाश्रम धर्म को कैसे नियम बद्ध विशुद्ध प्राचीन धर्म सिद्ध करने की कुचेष्टा की है ? अर्थात् जो द्विज जनेऊ धारी नहीं वह भी प्रायः यक्ष, राक्षस तथा पिशाचों के समान ही हैं। जैसा कि उनके अन्न आदि वर्णन से जाना जाता है। महाभारत में कहा है कि "यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्" अर्थात्—मद्य मांस, सुरा तथा आसव ये यक्ष, राक्षस तथा पिशाचों के अन्न हैं। ऊपर युक्त जनेऊ रहित द्विजों के अन्नों को भी यही नाम दिये गये हैं। आप उन्हें इन से मिलाकर देखें।

इस चालाकी का भाव यह है कि हमारा वर्णाश्रम धर्म विशुद्ध तथा प्राचीन है। इस प्रकार का अनुचित भय दिखाकर उसे सब से श्रेष्ठ सिद्ध करने का यह उनका एक अद्भुत नमूना है।

परन्तु ज्ञानवान् उनकी इस बनावट को चलने नहीं देते। श्री मद्भागवत स्कं० ९/१४ में लिखा है कि—

"एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्व वाङ्मयः।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४ ॥"

अर्थात्—पहले पहल सब वाङ्मय का व्यापने वाला एक ही प्रणव, एक ही नारायण (मुखिया), एक ही प्रकार की अग्नि तथा समस्त मनुष्य भी एक ही वर्ण के थे।

इस का अनुमोदन—महाभारत के इस श्लोक से भी हो जाता है कि—

"एक वर्ण मिदं पूर्वं विश्व मासीद युधिष्ठिर।
कर्म क्रिया विभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्॥"

अर्थात्—हे युधिष्ठिर! पहले इस पृथ्वी पर एक ही वर्ण था। कर्म क्रिया के विभेद से बाद को वही चार भागों में विभक्त हुआ है।

श्री मद्भगवद्गीता के अध्याय ४। श्लोक १३ में श्री कृष्ण जी महाराज कहते हैं कि इन चार वर्णाश्रमों को मैंने सृष्ट किया है। इधर राजा मान्धाता के समय चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों में दस्यु पर्याप्त रूप से दिखाई देते हैं। देखो महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ६५ श्लोक २३—

दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्व वर्णेषु दस्यवः।
लिंगान्तरे वर्त्तमाना, आश्रमेषु चतुर्ष्वपि॥ २३॥

अर्थात्—श्री राजा मांधाता जी कहते हैं कि—

मनुष्य समाज के चारों वर्णों में तथा चारों ही आश्रमों में दस्यु नज़र आते हैं, जिनके चिन्ह भिन्न २ हैं। पुनः अन्यत्र लिखा है कि इसी राजा की तत्कालीनी प्रजा में—यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पल्हव, आन्ध्र, मद्र, पौंड्र, पुलिन्द, रमठ, तथा काम्बोजादि प्रभृति जातियों के लोग भी सम्मिलित थे, जो आज सब इस खिचड़ी रूपा हिन्दू जाति में ऐक मेक हो चुके हैं। देखो ऊपर युक्त अध्याय के श्लोक १३ से।

पुनः महाभारत आदि पर्व अध्याय १७७ के श्लोक ३६ से इन्हीं शूरवीर जातियों की अद्भुत उत्पत्ति तथा उनकी "म्लेच्छादि" घृणा युक्त पदवियों को भी आप देख सकते हैं, जो उन्हें भारत वासी वसिष्ठ मुनि के पक्ष में होकर विदेशी आक्रमणकारी वेदों के प्रसिद्ध विश्वामित्र=काद या गाद वासी नमरूद को विजय करने के उपलक्ष में इन नवागत हिन्दू देव पूजक विश्वामित्र के पूर्ण भक्तों ने उन्हें द्वेष वश अर्पण कीं।

यहां "नन्दिनी" नामक एक गाये का प्रकरण आया है, जो पूर्ण रूप से वसिष्ठ मुनि के अधिकार में थी, परन्तु विश्वामित्र इस गौ को अपने अधिकार में लेना चाहते थे, वसिष्ठ मुनि उसे देना नहीं चाहते थे, विश्वामित्र जी कहते हैं "यदि तुम दश क्रोड़ गौ लेकर मुझे इच्छा की हुई गौ नहीं दोगे, तो मैं अपना धर्म नहीं छोड़ोंगा, बल से छीन ले जाऊँगा। वसिष्ठ जी बोले कि तुम बलिष्ठ क्षत्रिय राजा और भुजवीर्य युक्त हो, अतएव तुम जैसा चाहो वैसा ही करो, अधिक विचार का प्रयोजन नहीं है" श्लोक १६ व २०। इस के उपरान्त विश्वामित्र की सेना गौ पर टूट पड़ी, "उस गौ की पूँछ से—पल्हव गण, थनसे द्राविड़ तथा शक, योनि से यवन, गोबर से शबर, मूत्र तथा पार्श्व भाग से भी कई शबर गण उत्पन्न हुए, फेन से पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्बर, खस, चिबुक, पुलिन्द, चीन, हुन,

केरल आदि नाना म्लेच्छों को बनाया" श्लोक ३८ पर्यन्त। अन्त को इन्हीं म्लेच्छ सेनाओं ने विश्वामित्र की बलवती सेना को मार भगाया। यह इस बनावटी कथा का सार है जिसे आपको अवश्य ही बुद्धि पूर्वक विचार करना चाहिये। इन में की अब कोई जाति पृथक तो कहीं भी दृष्टि गोचर नहीं होती। ये भी निश्चित ही है। वे या तो नवागत हिन्दू आर्य्यों में या उपस्थित दलितों ही में प्रायः लुप्त सी हो चुकी हैं, जिनका विना साधन सरलता से पता लगा लेना यह आज प्रत्येक अन्वेषक के लिये सम्भव ही नहीं।

परिणाम—इन कतिपय सार गर्भित ऐतिहासिक तथा धार्मिक युक्ति युक्त प्रमाणों के प्रकाश में वर्णाश्रम की बनावटी प्राचीनता तो अब अच्छी तरह काफ़ूर हो जाती है। तथा जिन दास, दस्यु, शूद्रों को आज वे अपने से दीन हीन, नीच अधम समझ कर धर्माधिकार से वंचित कहते हैं। वे प्रायः आज से शताब्दियों पहले उनके इन नये वर्णाश्रमों में बहुधा प्रविष्ट हो चुके हैं। देखो श्री मांधाता जी के शब्दों में "सर्व वर्णेषु दस्यवः" तथा "आश्रमेषु चतुर्ष्वपि" इस से सिद्ध हुआ कि उपस्थित शूद्र जातियों के पूर्वज वर्त्तमान उच्च कोटि के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा नाम के शूद्रों सहित सन्यासियों में सम्मिलित हो चुके हैं। उपस्थित अत्याचारों का ढोंग रूपी दौर यह श्री शंकर के अपने समय से चालु हुआ है ताकि इन कठोर तर बन्धनों से जकड़ कर उन उपस्थित नवदीक्षित जैन, बौद्धों को उनके पूर्व धर्म परिवर्त्तन की न भूलने योग्य सकष्ट, लज्जा पूर्ण शाश्वत पीड़ा हो सके।

इस्लामी सत्यता का अनूठा अनुमोदन—रहा इस वर्णाश्रम धर्म का अनादि व सनातन होना, जैसा कि बहुधा इस पक्ष के हिन्दू आर्य्य कहा करते हैं। सो यह किसी विशुद्ध प्रमाण से सिद्ध ही नहीं। जो वेदों के आधार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामों को अनादि मानते हैं, उन्हें यजु० अध्याय ३० मन्त्र ५—से अध्याय के अन्त पर्यन्त अवश्य देख लेना चाहिये, जिस में ब्राह्मण से लेकर प्रायः भारत की १७२ मुख्य जातियों के नाम एक ही अध्याय में वर्णित हुये हैं। इस में उन्हें अपनी इस निराधार कल्पना का स्वयं ही बोध हो जावेगा, कि आया यह ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नामों वाली वर्णाश्रम की कल्पना नई है, वा पुरानी?

इस संक्षिप्त शास्त्रीय गम्भीर अन्वेषण के पश्चात् अब प्रत्येक बुद्धिमान इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि यह सारी कल्पनायें केवल हिन्दू आर्य्यों की उन द्वेष पूर्ण भावनाओं का परिणाम हैं, जो उन्हें पहिले ही से समूह रूप इन मूल देश वासियों के प्रति उत्पन्न हो चुकी थीं। पुनः इनके उपस्थित रूप धारण का ठीक अवसर इन्हें श्री कुमारिल तथा उनके योग्य शिष्य श्री शंकर के समय प्राप्त हुआ, जिसे हिन्दू आज अपनी पूर्ण भूल से "सनातन धर्म मर्यादा" कहकर इन दया, धर्म रहित नियमों को अनेक निर्बलों सहित नाना अबलाओं पर लागू करते हैं।

अन्यथा इसका पूर्वतर रूप वही था जिसे इस्लाम मूलक श्री क़ुरान ने २।१० की इस "कानन्नासो उम्मतँव्वाहे्दतन्न" से "बग़्यन्न् बैनहुम्" पर्यन्त एक ही आयत में बड़ी उत्तमता से वर्णन कर दिया है, कि पहले यह एक ही धर्म तथा एक ही वर्ण के लोग थे, पुनः उन्हों ने आपुसी ईर्षा तथा द्वेष के कारण उस एक ही धर्म तथा वर्ण में नाना भेद किये, जैसा कि अभी ऊपर युक्त पंक्तियों में आप उनके बहु मूल्य धर्म शास्त्रों के अपने प्रकाश में भी अवलोकन कर चुके हैं। इसके उपरान्त यदि न्याय दृष्टि से देखा जावे तो उन्हों ने अपने इस मूल विरोध को भी एक प्रकार से खुले शब्दों स्वीकार कर लिया है कि उनके इस मूल विरोध का पहला कारण भी श्री कृष्ण महाराज ही हैं, देखो गीता ४।१३। पुनः इनका यह कर्म—एक धर्म तथा एक वर्ण के विरुद्ध हुआ है, इसे आप ऊपर युक्त श्री मद्भागवत पुराण तथा हिन्दुओं के प्रसिद्ध पांचवें वेद श्री महाभारत के अपने प्रमाणों से जान ही चुके हैं। इस प्रकार श्री क़ुरान की यह वह सत्यता है कि जिसे बहुधा लोग आज कल द्वेष वश छिपाना चाहते हैं, परन्तु सौभाग्य की बात है कि आप के मान्य धर्म शास्त्र अब भी उसकी इस अनूठी (अद्वितीय) कथनी का मुक्त कण्ठ से अक्षरशः अनुमोदन कर रहे हैं, जैसा कि अभी आप ऊपर देख चुके हैं।

इस्लाम धर्म में दास, दासी तथा स्त्री मात्र का अधिकार

हिन्दू आर्य्य नाम के वर्णाश्रम अथवा सनातन धर्म में दास दासी अथवा स्त्री शूद्र मात्र के धर्माधिकार को तो आप अच्छी तरह जान ही चुके हैं। अब इसी धर्माधिकार सम्बन्ध में इस्लाम क्या कहता है ? इसे भी आप थोड़े से शब्दों में और जान लीजिये ताकि इन दोनों के इस साधारण समन्वय पूर्वक स्वाध्याय से आप को उचित लाभ का सौभाग्य प्राप्त हो सके। परन्तु श्री इस्लाम धर्म के मूल प्रचार के पूर्व इन दास दासी तथा दुःखिया स्त्री जाति की वास्तविक दुर्दशा मय दयनीय स्थिति क्या थी ? यह प्रायः सब पाठकों को अच्छी तरह ज्ञात नहीं, अतः इस से पूर्व उस दुर्दशा का जान लेना भी एक प्रकार से आवश्कीय ही है। सम्पूर्ण संसार के समस्त धर्मों में उनकी यह दुर्दशा भी प्रायः हिन्दू धर्म के समान ही थी। साधारण शब्दों में आप ऐसा ही समझें। नाम की धार्मिक सृष्टि में इन दोनों के संग क्या कुछ अत्याचार हुए ? यदि उनका पूरा २ चित्र खींचा जावे तब तो सम्भवतः आज कल के बहुधा शिक्षित लोग उन अत्याचार मूलक धार्मिक कथाओं को मूलतः स्वीकार ही नहीं करेंगे। अब इस्लाम मूलक शिक्षा के प्रताप व प्रसाद से लोग उन बातों को सम्भवनीय ही नहीं मानते, क्यों कि उपस्थित युग की मनोवृत्ति उससे कहीं अधिक उन्नत हो चुकी है। परन्तु वास्तविक ऐतिहासिक दृष्टि से वे सब बातें धर्मानुसार समझ कर ही इन दोनों पर लागू की गई थीं, यह एक ऐतिहासिक सत्य है, जिस पर प्रायः इस्लाम सहित समस्त धर्मज्ञ एक मत हैं। अब इन्हीं दोनों को आप निम्न पंक्तियों में उनके दो पृथक २ शीर्षकों में अवलोकन करें।

क–इस्लाम के पूर्व स्त्री जाति की दुर्दशा—यह बात इतिहास सिद्ध है कि जैसे हिन्दू धर्म में स्त्री जाति को धर्म का कोई अधिकार नहीं वैसे ही उसे इस्लाम से पूर्व प्राय: अन्य प्रचलित धर्मों में भी कोई अधिकार न था।

यथा—क—(१—४५)—१—इस्लाम के पूर्व स्त्रियां प्राय: गृहस्थियों के अन्य सामान्य घरेलू पदार्थों की न्याईं ख़रीदी तथा बेची जाती थीं।

२—उन्हें पशुओं के सदृश समझा जाता था।

३—वे मनुष्य के निकट हर प्रकार के असह अत्याचारों के सहन योग्य समझी जाती थीं।

४—उन्हें मनुष्योपयोगी अधिकारों में कोई उपयुक्त स्थान उपलब्ध नहीं था।

५—वे स्त्री होने ही के नाते प्रत्येक कुकर्म की अधिकारिनें समझी जाती थीं।

६—वे दीन, हीन, सदा टहलनी तथा दासी ही होने के योग्य (कनीज़ें) समझी जाती थीं।

७—उन्हें किसी धर्म मर्यादा तथा लौकिक विधानों में कोई अधिकार नहीं था।

८—उनका कोई भी स्वामी बन सकता था, परन्तु वे स्वयं किसी की स्वामिनी बनने के सदा अयोग्य समझी जाती थीं।

९—उनकी धन सम्पत्ति के दायभागी अन्य लोग हो सकते थे, परन्तु उन्हें किसी अन्य के धन में कोई भाग प्राप्त नहीं होता था।

१०—प्रत्येक स्त्री को निज पति के धन में भी कोई अधिकार नहीं था।

११—पुन: पुरुष को सपत्नी होने पर अपने तथा अपनी भार्या दोनों के धन पर पूरा अधिकार हो जाता था, किन्तु उसकी स्त्री बनने वाली अपने पूर्व स्वतन्त्र धन से भी वंचित समझी जाती थी।

१२—कुछ लोगों को स्त्री में जीव है वा नहीं ? इस सर्वोपरि प्रमुख सिद्धान्त में भी सन्देह ही था।

१३—कुछ उसकी धार्मिक शिक्षा में हठ पूर्वक सन्देह करते थे।

१४—कुछ उसकी भक्ति को स्वार्थ वश संदिग्ध मानते थे।

१५—कुछ अज्ञानता पूर्वक उसके स्वर्ग वास में सन्देह करते थे।

१६—कुछ उसे अपनी अपूर्ण ज्ञान दृष्टि से मानुषी जीव रहित अपवित्र पशु मानते थे।

१७—किन्तु मिथ्या अभिमान के वशी भूत बहुधा लोग अपनी निज भक्ति तथा सेवा उसके लिये अनिवार्य समझते थे।

१८—२०—कुछ उसे शैतान का जाल भी मानते थे। तथा ऊँठ व कूकर की भान्ति उसका मुख बन्धन चाहते थे, ताकि हंस, बोल न सके।

२१—कुछ इसे अबोध पशु भी कहते थे।

२२—२३— इस के मार डालने व बेचने पर मनुष्य को कोई पाप नहीं होता । न उस पर किसी प्रकार का कोई रक्त बहा लागू होता है।

२४—कुछ इसे मनुष्यता रहित साक्षात् शैतान ही मानते थे।

२५—२६—कुछ भूल से इसके धर्म तथा विश्वास ही को अस्वीकार करते थे। वे अपने अनर्गल विधानों के बल स्त्री जाति को बलात्कार धर्म शास्त्रों से वंचित रखते थे।

२७—कतिपय लोग यह भी मानते थे कि स्त्री में विश्वासियों का सा आत्मा नहीं जो उन्हें प्रभु ने स्वर्गाधिकार के लिये प्रदान किया है, अतः स्त्री जाति उनके संग स्वर्ग बास की अधिकारिन नहीं।

२८—कुछ उसे दीन दारी से बिल्कुल रहित, धर्म, पन्थ, सुमार्गाधिकार से नितान्त वंचित समझते थे।

२९—३३—प्राचीन काल में उन्हें पुरुषों के साथ पूजा स्थलों, कथा उपकथाओं के पवित्र स्थानों, शिक्षा ग्राह्य उत्तम धार्मिक संघों, सुधार सभाओं तथा राज नीति की महत परिषदों में सम्मिलित होने का कोई अधिकार न था।

३४—पूर्व काल में इनके विवाह भी इनके सुख का हेतु नहीं बनते थे, विवाहों के पश्चात् ये पहले से भी अधिक पराधीनता की कठोर शृङ्खलाओं में जकड़ी जाती थीं, मानों पहले जो कुछ इन्हें नाम मात्र की स्वाभाविक स्वतन्त्रता रहती थी वह भी इन से सदा के लिये छिन जाती थी, इस प्रकार सत्य पथ रहित मनुष्यों के निकट यह अबला जाति सदा के लिये उनकी दास भाव युक्त पूर्ण दासी बन जाती थी।

३५—४५—फिर उन्हें उनके शादी विवाहों में भी स्वयं वर चुनने का कोई अधिकार न था, उनके अधिकारी जैसा चाहते थे वैसा कर देते थे, यदि उनकी अपनी इच्छा होती तो शादी कराते अन्यथा उन्हें शादियों से भी रोक रखते, पुनः पुरुष चाहे तो विवाहिता को भी त्याग सकता था, फिर वह चाहे तो त्यागी हुई से पुनः मेल कर सकता था, किन्तु वह त्यक्ता अपने त्याग करने हारे की इच्छा विना किसी अन्य से स्वयं शादी करने में स्वतंत्र नहीं समझी जाती थी। पुरुष अपनी स्त्रियों का अदला बदला भी कर सकते थे, पुनः पुरुषों के लिये स्त्रियों की कोई नियत संख्या भी न थी, यदि पुरुष चाहे तो अपनी स्त्री को अन्य पुरुषों से वीर्य लाभ की आज्ञा भी दे सकता था, पिता की विवाहिता से भी सन्तान उत्पन्न करते थे, एक पुरुष दो सहोदर बहिनों को भी रख सकता था, इत्यादि। इस प्रकार इस पवित्र इस्लाम धर्म के पूर्व इन जगत विख्यात सर्व शिरोमणि संसार सुधारक ज्ञानी महात्माओं तथा मनुष्य मात्र की प्रसिद्ध जननी स्त्री जाति की यह दुर्दशा हो चुकी थी।

ख—निर्दोष कन्या बध—इस के उपरान्त उसी दुःखिया स्त्री जाति का एक प्रधान अङ्ग उनकी कोमल हृदय, निर्दोष कन्यायें थीं जो खुले बन्दों उनके अपने माता पिताओं द्वारा बध होती थीं। यह कितना भारी पाप था कि जिसके स्मरण मात्र ही से कलेजा मुख को आता है। उनके इस रोमाञ्चकारी अंश के हृदय विदारक वृतान्तों को पढ़ २ मन की अच्छी उमङ्गें सब जाती रहती हैं, लेखनी हाथ से गिरी पड़ती है, पुरातन मिथ्यावाद की यह सारी चित्रकारियां अपने अन्याय पूर्ण कारणों सहित छाकर इस स्वच्छ स्थिर निपस्त (शान्त) मस्तिष्क को नीर बना आंखों द्वारा बहा देना चाहती हैं। यदि मैं समझता कि आप इन प्राचीन अत्याचार पूर्ण कथाओं के जनाये बिना भी इस्लाम के इस योग्य महत्व को समझ सकेंगे, तो मैं इन कष्ट सम्पन्न दारुण पंक्तियों का भूल कर भी कभी वर्णन न करता, कारण इनके श्रवण, मनन, स्मरण तथा दर्शन ही से करुणा मय शान्त मन को भारी कष्ट होता है, परन्तु आप समयानुसार यह समझ सकें कि श्री इस्लाम सन्सार की किस स्थिति को सम्मुख कर इसका उपकार पूर्ण विशुद्ध सुधारक बनकर प्रकट हुआ, प्रायः इस अज्ञात विषय को स्फुट करने के लिये ही इन सदा भुलाने योग्य कथाओं की यहां पुनरावृत्ति करता हूँ।

कन्या बध के मुख्य नेता—यह कन्या बध की दुःख दाई धारा इस्लाम के पूर्व प्रायः समस्त संसार की बड़ी २ धर्मवान्, लज्जावान्, तथा वीर्यवान प्रमुख शूर जातियों में बहुधा प्रशंसा के योग्य समझी जाती थी। इस अकृत्य करणी से कोई अपने को दोषी नहीं मानता था, न उनके दुर्व्यवहार के हेतु उन्हें अन्य कोई पापी समझता था। उस समय के प्रमुख अरब तथा उपस्थित भारतीय क्षत्रिय ये दोनों ही प्रधान रूप से इस पाप मय कर्म के विधिवत मुख्य नेता समझे जाते थे। आज भी संसार के ऐतिहासिक पत्रों में इस कन्या बध का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रायः इन्हीं दो से अधिक प्रमाण में वर्णित हुआ दृष्टि गोचर होता है। जिन लोगों ने नये पुराने धार्मिक इतिहासों का गवेषणा पूर्वक स्वाध्याय किया है, वे इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं कि अब यह महा पाप अरब देश में तो नाम मात्र के लिये भी कहीं नहीं रहा, किन्तु भारत के उपस्थित दूर निकट प्रान्तों में यह अब भी कहीं २ वैसा ही विद्यमान है जैसा कि अपने पूर्व काल में विराजमान था। इसका मुख्य हेतु भी इसी के साथ २ यह समझ लेना चाहिये कि श्री इस्लाम धर्म का मूल प्रचार जैसा अरब में हुआ, वैसा भारत में नहीं हुआ। हमारी दृष्टि में प्रचार की इस उपस्थित कमी को भारतीय हिन्दू मुस्लिम दोनों को मिलकर पूरा करना चाहिये क्यों कि ऐसा न करने से उक्त अबला जाति सहित कन्याओं की पूर्ण रक्षा सम्भव ही नहीं।

कन्या बध का संक्षिप्त परिचय—अब ये ऐतिहासिक कन्या बध क्योंकर तथा कैसे होते थे? इन्हें आप के समझने योग्य कतिपय उपयुक्त शब्दों में यहां उपस्थित करता हूँ,

ताकि आप को इस विषय का ऐतिहासिक तथ्य सहित इस्लाम से पहले होना सुनिश्चित हो सके।

ख—१—(१—२५) ऐतहासिक दृष्टि से यह कन्या बध बहुधा मान, अपमान के भाव ही से होते थे, जैसा कि भारतीय क्षत्रियों के सम्बन्ध में भी प्रसिद्ध है कि वे स्वयं दूसरों की कन्यायें ले लेने पर तो भारी अभिमान करते थे, परन्तु अपनी कन्यायें भरसक दूसरों को देना नहीं चाहते थे।

प्रायः वैसे ही अरब देशीय युद्ध प्रिय जातियों के लोग भी दूसरों के साले श्वसुर बनने में अपना भारी अपमान समझते थे। इसी भाव से जब एक दल दूसरे पर आक्रमण करता था, तब पहले एक दूसरे की स्त्री कन्याओं पर ही अधिकार जमाते थे, इससे विजययी, सम्मानित तथा विजयता अपमानित समझे जाते थे। पुनः इन्हीं बातों को वे कविता के रूप में लेख बद्ध करके अपने विजितों को हीन, तुच्छ, निर्बल तथा कायरता युक्त निर्लज्ज कहकर उनकी भरी सभाओं में निन्दा, तथा अपनी स्त्री कन्याओं सहित प्रशंसा करते थे। यथा शक्ति विजितों की स्त्रियों को भी उनके विरुद्ध अपना समर्थक बना उन्हें अधिक लज्जा दिलाते थे, ये प्रायः धनिक समूह की सुन्दर कन्यायें ही होती थीं, शेष निर्धन लोग धनाभाव के कारण सुन्दरी असुन्दरी दोनों ही को मार देना उचित समझते थे। कुरूपा, रोगनियों का तो कहना ही क्या है, गंजी, साँवली, कुष्ठ रोगी व अन्य प्रकार की अङ्गहीना तो किसी के निकट जीवन योग्य समझी ही नहीं जाती थीं। कुछ शादी के समय ही स्त्रियों से यह प्रण ले लेते थे, कि जो कन्यायें होंगी वे मार दी जायेंगी, अथवा एक रख ली जावेगी। कुछ लोग लड़कों की भांति कन्याओं को मनौती मान कर भी मार डालते थे। कुछ इस भ्रम में भी कन्याओं को मार देते थे कि वे बेटी संज्ञा वाली हैं और इस संज्ञा वाले फ़रिशते ये ख़ुदा की बेटियां हैं, ऐसा मानते थे, इस लिये उन्हें अपने पास रखना उचित नहीं समझते थे।

२—(१—३०) **पाप मय दशा**—पुनः ये निर्दोष कन्यायें किन २ उपायों से कैसे २ मारी जाती थीं ? यह पाप मय दृश्य भी आप जैसे धर्म प्रेमी सज्जनों के जानने योग्य ही है। अतः अपने दुःखी मन की खिन्न धाराओं को हठात संग्रह कर उसे भी उपस्थित करता हूँ। आशा है आप इस से अपनी विकृत मनोवृत्तियों का उचित संशोधन करेंगे।

सब से पहली बात ये कन्यायें हिन्दुओं की देव बलि की भान्ति यथा शक्ति ख़ूब सजाई जाती थीं, पुनः रूढ़ हिन्दुओं की तरह कोई इन्हें जन्मते ही मार डालते थे, कोई नियत समय पर्यन्त उन से घरों का काम न ले पशु चरवाते थे, फिर समय आने पर देव मन्दिरों के सम्मुख बध कर देते थे, अथवा जलती अग्नि में भी झोंक देते थे, कुछ विशेष स्थितियों में तीर्थ स्थानों की भेंट भी कर दिया करते थे, कुछ बध के ठीक समय दैवी सङ्केत पाकर उन्हें वैसे ही बनों में भी छोड़ आते थे, कुछ भेंट की हुई सन्तानों को ऊँठादि पशु बदला में देकर छुड़ा भी लेते थे परन्तु इस

प्रकार के उदाहरण बहुधा कन्याओं के पक्ष में देखे नहीं जाते, (और यह बाल रक्षा का नियम भी प्रायः उन बन में छोड़ी दु:खिया कन्याओं ही की ओर से बालकों की भावी रक्षा के निमित्त चलाया व बताया हुआ सिद्ध होता है ।) यह विधि प्रायः देव मन्दिरों व पूजा स्थलों के सम्मुख पहुँच कर विशेष बध स्थलों में पाँसे डाल कर पूरी की जाती थी, इस प्रकार की कन्यायें अधिकांश नूतन कूप, गढ़े आदि खोद कर ही उन में धोखा से गिराई तथा मारी जाती थीं, इस कन्या मार व उसके गाड़ने में कभी २ कन्या का पिता व उस के अन्य सम्बन्धी भी सम्मिलित होते थे, कभी पिता को अकेले ही यह काम करना पड़ता था, अभी २ अपने विशेष नियमानुसार कन्या की माता तथा उससे कुछ जान पहचान रखने वाली अन्य स्त्रियां ही इस काम को करती थीं, पिता जान बूझ कर उस समय पृथक होजाता था, परन्तु कन्या के मारने व गाड़ने में माता पिता दोनों ही एक मत होते थे, पुनः जिस कूप व गड़े में उन कन्याओं को डाला जाता था, उनका ईंट, पत्थर, मिट्टी आदि से भरना भी आवश्यकीय ही समझा जाता था, ऐसी स्थिति में गढ़े, कूप में पड़ी कन्याओं की चीत्कार पर कोई ध्यान न देना ही यह उन भरने हारे स्त्री, पुरुषों का मुख्य ध्येय रहता था, कुछ पुराने हिन्दुओं की तरह ऐसा भी करते थे कि उन कन्याओं को बड़े २ ऊंचे पहाड़ों अथवा ऊँचे २ टीलों से स्वयं गिराकर मार डालते थे, कुछ नदी, नालों में डबोने का भी अपघात करते थे, तथा कुछ सीधे ही अपनी तीक्षण धारा असि चलाकर उन अबलाओं का माथा स्वयं जुदा कर देते थे, इत्यादि इन संक्षिप्त कथाओं को आप अरबी तथा संस्कृत भाषाओं के मूल वृहत ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक देख सकते हैं।

ग—दास दासियों की शोचनीय दशा—इस से पूर्व (क, ख) नामक साधारण नम्बरों में इस्लाम धर्म से पहले स्त्री जाति की क्या दशा थी ? उनकी आंखों की ज्योति, हृदय का प्रकाश, माथे का सुख, संसार के मौलिक हितों की श्रम पूर्वक रक्षिका, मनुष्य मात्र की स्वाभाविक सङ्गी, स्वयं कष्ट सह कर अन्य के उपकार हित निज जीवन को हंसती २ निछावर करने वाली उनकी प्यारी कन्याओं के सङ्ग क्या कुछ नहीं हुआ ? इनसमूह रूप सर्व दुर्घटनाओं को प्रायः आप (४५+२५+३०=एक सौ) १०० अङ्कों की अति सूक्ष्म सङ्केत युक्त संख्याओं में देख ही चुके हैं। जब इन पूज्य माताओं सहित उनकी निज पुत्रियों की यह दशा थी, तो उस समय उन से उत्पन्न मान, मर्यादा हीन दास, दासियों की अपेक्षा कृत क्या दशा होनी चाहिये ? इसका आप उन्हीं ऊपर युक्त विशुद्ध अङ्कों से ठीक २ बोध युक्त अनुमान कर सकते हैं।

ये दास दासियां इस्लामी युग को छोड़ सदा ही कीट पतंगों की नाईं तुच्छ समझी जाती थीं, इन के सङ्ग कैसे २ दुर्व्यवहार होते थे ? यह सब बातें आप प्रायः प्राचीनतम मिश्री, बाबिलोनियन, ईरानी, हिन्दुस्तानी, यूनानी, रूमी तथा पुराने अरबों के मुख्य इतिहासों को मिलाकर स्वाध्याय करने से अच्छी तरह जान सकते हैं।

फिर परिणाम के तौर पर इनके रहन, सहन तथा इनके श्रम पूर्वक कठोरतम व्यवहारिक नियमों का आप इस्लाम तथा उपस्थित संसार के बड़े २ प्रसिद्ध धर्म विधानों से समन्वय पूर्वक निश्चय करें। ऐसी तुलना आत्मिक न्याय दृष्टि से किया हुआ आप का यह विशुद्ध स्वाध्याय, अवश्य ही आप को इस स्थिति पर पहुंचा देगा कि इन सर्व सम्मति से कृमि समान समझे गये दास दासियों पर जो उपकार इस्लाम धर्म ने किया है, उसकी तथ्य पूर्ण उपमा आप किसी अन्य धर्म में पा ही नहीं सकते। यही उनकी पूर्व शोचनीय दशा का अटल प्रमाण है।

प्रकरणानुसार इसका थोड़ा सा ब्योरा मैं यहां भी अवश्य ही दूंगा परन्तु विस्तार पूर्वक यह स्थल किसी ऐसे विषय विशेष के लिये उपयोगी नहीं, यदीश्वर इच्छा जीवत रहे तो इन समस्त तात्विक विषयों को हम श्री क़ुरान की एक स्वतन्त्र बृहत भूमिका में यथा योग्य प्रमाणों सहित उद्धृत करेंगे।

इस्लामी उपकारों का बीज परिचय—अब जैसा कि इस प्रकरण के आरम्भ में हमने पहले हिन्दुओं द्वारा इन पर किये गये अन्याय पूर्ण अत्याचारों का संक्षेप से वर्णन किया है, वैसा ही इस्लामातिरिक्त अन्य धर्मों तथा जातियों का भी थोड़ा सा सङ्केत रूप से उल्लेख किया है। इन सब के उपरान्त मूल इस्लाम ने इन सदा दुःखियों पर क्या कुछ उपकार किये? इसका अब यहां अपने पाठकों को बीज रूप से किञ्चित परिचय दिलाना चाहते हैं।

हमारे पूर्व प्रकरण में पहले स्त्री जाति फिर कन्यायें तथा अन्त में दास दासियों का उल्लेख हुआ है, परन्तु इस स्थल पर हम उस क्रम का अनुसरण न करते हुए पहले कन्या सम्बन्धी, पुनः स्त्रियों के सम्बन्ध में तथा शेष दासों के उपकार भूत प्रमाण क्रम को चलायेंगे, यह स्मरण रहे।

क़ुरान तथा कन्या बध निषेध—पीछे जिस कन्या बध की चर्चा आचुकी है, उसका क़ुरानाज्ञानुसार अब यहां निषेध अवलोकन करें। इसके सम्बन्ध में क़ुरान की प्रमुख तीन आयतें उपस्थित करते हैं।

पहली क़ुरान ८।३ में, दूसरी ८।६ में, तथा तसरी क़ुरान ३०।६ में वर्णित हुई है।

पहिली में सन्तान बध का हेतु ईशातिरिक्त ठाकुरों का प्रभाव तथा दूसरी में उन्हीं ईशातिरिक्त पुजारियों की अपनी निर्धनता का उल्लेख कर उन्हें न मारने की सप्रमाण आज्ञा दी गई है, एवं तीसरी आयत में जीवित कन्या के गाड़ने तथा उस के बध का स्पष्ट प्रमाण है। पुनः ८।३ की एक दूसरी आयत में उनके इस सन्तान बध का एक हेतु उनकी अपनी ज्ञान रहित मूर्खता भी सम्मिलित की गई है।

इस प्रकार श्री क़ुरान ने धार्मिक जगत में सब से पहले इस कन्या बध का बल पूर्वक निषेध किया, देखो "ला तक़्तोलू३ औलाद कुम्" (तुम अपनी सन्तान को मत मारो) क़ुरान ८/६।

और यह निष्ठुर प्रथा उपस्थित क़ुरान के पहले प्रचलित थी, यह आप क़ुरान ८।३ के दूसरे स्थल "क़तलू औलाद हुम्" (उन्हों ने अपनी सन्तानों को बध किया) तथा उसके पहले स्थल "क़त्ल औलादे हिम्" (सन्तान को मार देना उन्हें अच्छा लगा) से जान सकते हैं। पुनः इस औलाद व सन्तान में से कन्या ही गाड़ी तथा बध की जाती थी, यह आप क़ुरान ३०।६ के इन शब्दों "वइज़ल् मौऊदतो सुएलत् बे अय्ये ज़म्बिन्न क़ुतेलत्" (किसी समय उस जीवत गाड़ी गई कन्या से यह प्रश्न होगा कि तू किस अपराध में बध की गई ?) से निश्चित करें।

यह कन्या बध की दोष पूर्ण क्रूर प्रथा प्रायः अरब देशीय इशातिरिक्त मूर्त्ति पूजक (मुशरिकों) ही में प्रचलित थी, जैसा कि क़ुरान ८।३ के पहले स्थल से प्रकट होता है, पुनः हिन्द में भी प्रायः ऐसे ही लोग इस के दोष भागी दृष्टि गोचर होते हैं। क़ुरान ८।३ के दूसरे स्थल में इन्हीं लोगों को निश्चय रूप से टोटा पाने वाले तथा ज्ञान रहित मूर्खता युक्त कहा गया है। वे सब अपने ठाकुरों की मत्यानुसार चलते थे, तथा उनके ठकुरों ने ही उन्हें उनके दीन (धर्म पथ) को उन पर सन्दिग्ध बना रखा था, उनकी यह बातें भी प्रायः उपस्थित हिन्दुओं से अधिक मेल रखती हैं। फिर "साऽऽमायद्‌ कोमून्" क़ुरान ८।३ से यह भी जाना जाता है कि ये लोग अपने ठाकुरों को ईश्वर की अपेक्षा अधिक प्रसन्न रखना चाहते थे।

अन्ततः इसी भाव से श्री क़ुरान ने इन हत्यारे ईशातिरिक्त जड़ पूजक निर्बोध मुशरिकों को अपवित्र मान कर उन्हें पवित्र स्थानों के प्रवेश से एक दम रोक दिया, देखो "इन्नमल् मुशिरकून नजसुन्न" से "बऽद आमे हाज़ा" पर्यन्त क़ुरान १०।१०। इन कतिपय मुख्य प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि यह नृशंसक प्रथा इस्लाम के मूल प्रचार से पहले अरब देश में वैसी ही प्रचलित थी जैसी कि किसी समय हिन्द सहित अन्य प्रदेशों में पाई जाती थी, परन्तु साहस पूर्वक इसके विरुद्ध इसे रोकने का ऐसा उत्तम प्रयत्न किसी ने नहीं किया जैसा कि इस्लाम के मूल प्रचारक करुणामय श्री मुहम्मद महोदय ने स्वयं किया। इसका सब से उज्ज्वल प्रमाण यही है, कि इस्लाम के शभ चरणारविन्दओं के प्रसाद से आज भारत को छोड़ भू भाग के अन्य प्रदेशों में इस असह कुप्रथा का नाम तक भी कोई नहीं जानता। इसी भाव से इस "कन्या बध निषेध" का प्रशंसा युक्त शुभ मुकुट केवल इस्लाम प्रचारक ही के सिर शोभा देता है।

इस प्रचार का अद्‌भुत प्रभाव—पहले जिन लोगों में कन्या बध भारी पुण्य समझा जाता था, अथवा जो इसके द्वारा मनौती पूरी कर हँसी खुशी अपने घरों में चैन के दिन बिताते थे, या इसमें अपने मान सम्मान की रक्षा सहित पूरी सफलता समझते थे, वे ही इस इस्लाम के सदोपदेशों के प्रभाव से अब धीरे २ अपने २ हृदयों में कन्या बध आदि को पाप पूर्ण समझ कर, प्रायश्चित्त रूप से, श्री मुहम्मद महोदय के निकट झुण्ड के झुण्ड आने लगे, जैसा कि

क़ुरान ३०।१३ में वर्णित हुआ है। ईश्वर निश्चय बड़ा ही पश्चात्ताप स्वीकार करने वाला है "इज़ा जा३" से पूरी सूरत "इन्नहू कान तव्वाबा" पर्यन्त।

बोध युक्त दो उदाहरण—उन क्रूर प्रकृति देश वासियों पर इन इस्लामी सिद्धान्तों का कितना शीघ्र तथा अद्भुत प्रभाव हुआ कि अब वे इन दुःखों को स्वयं पूर्ण रूप से अनुभव करने लगे। इसका ठीक अनुमान आप इन दो निम्न अङ्कित उदाहरणों से अवबोधन करें।

पहला उदाहरण—"इस प्रकार के कन्या बध करने वालों में से एक व्यक्ति श्री मुहम्मद महोदय की सेवा में उपस्थित होकर निवेदन करने लगा, हे प्रभु प्रेषित, हमारे पहले अपराध क्योंकर क्षमा होंगे ? हम पहले ज्ञान रहित मूर्ख तथा प्रतिमा पूजक थे। अपनी सन्तान को मार डालते थे, चुनाञ्चि मेरी एक कन्या थी, जब वह कई एक वर्ष की हो गई तथा (मेरे) प्रश्नों का ठीक २ उत्तर देने लगी, तब मैं उसके मार डालने की चिन्ता करने लगा, वह कन्या मेरी अत्यन्त ही अनुयायी तथा आज्ञा पालक थी, जब मैं उसे अपने पास बुलाता तब वह शीघ्र ही उत्साह पूर्वक दौड़कर मेरे पास चली आती, एक दिन मैंने उसे बुलाया और कहा कि तू मेरे सङ्ग चल, वह बड़ी प्रसन्नता से मेरे पीछे२ हो ली, मैं उसे अपने सम्बन्धियों के एक कूप पर जो मेरे घर से बहुत दूर नहीं था ले गया, और उसका हाथ पकड़ कर मैंने उसे उस कूप में ढकेल दिया, वह मुझे "अब्बा जान, अब्बा जान" कह कर पुकारती रही किन्तु मुझे उस पर किञ्चित दया न आई, और उसे ढकेल कर मैं शीघ्र ही वहां से चल दिया, श्री मुहम्मद महोदय उसका यह (करुणामय) वृत्तान्त सुन कर ऐसा रुदन किये कि आपके अश्रुपात से आप की दाढ़ी तक भीग गई, पुनः आपने आदेश किया कि तुम्हारी जाहेलिय्यत (अज्ञानावस्था) के सब पाप प्रभु क्षमा करेंगे, परन्तु आगे को शुभ कर्म करो" देखो (सुनने दार्मी नामक सूक्ति संग्रह)।

दूसरा उदाहरण—इसी प्रकार श्री मुहम्मद महोदय के पास दूसरा एक व्यक्ति और आया, उसने निवेदन किया कि हे प्रभु प्रेषित, जब से मैं मुसलमान हुआ हूँ तब से मुझे इस्लाम में कोई बात अच्छी नहीं लगती, जिसका विशेष कारण यह है कि अज्ञानावस्था में मेरी एक कन्या थी, मैंने अपनी स्त्री को आज्ञा दी कि तू इसे हर प्रकार के उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित कर, जब वह उसे ऐसा कर चुकी, तो मैं उसे एक बहुत बड़े गहरे नाला पर ले गया और उसे मैंने उसमें गिरा दिया, गिरते समय उसने यह (दुःख पूर्ण) शब्द कहे "अब्बा जान तुम ने मुझे मार डाला" जब उस का यह कथन मुझे स्मरण हो आता है, तब मुझे कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती, आपन आदेश किया कि तुम्हारे अज्ञानता काल के सब पाप इस्लाम ने मिटा डाले तथा अब इस्लाम में आकर किये हुये अपराधों को (तुम ईश्वर से) इस्तिग़फ़ार पूर्वक (प्रायश्चित्तों) द्वारा दूर कराओ" देखो (बुलूग़ुल् इर्ब फ़ी अह्वालिल् अ़रब भाग ३)।

पाठक अब आप ख़ूब सावधानी के साथ पहले इन उदाहरणों के निज शब्दों पर ध्यान पूर्वक विचार करें। पुनः कन्या बध निषेध के कारण रूप श्री मुहम्मद महोदय के आदरणीय आदेशों का मनन पूर्वक चिन्तन करें। इन थोड़े से शब्दों में उचित श्रम करने से आप को इस्लाम का महत्व, श्री मुहम्मद महोदय का करुणामय उपदेश तथा निष्ठुर अरब वासियों की पुरानी धर्म हीनता का याथा तथ्य बोध हो जावेगा। फिर इसी में सब से अधिक विचित्र वस्तु आप यह पायेंगे कि जो कुछ दिनों पहले इसी कन्या बध के कट्टर पक्षपाती थे, आज वही इसे सब से अधिक पाप अनुभव कर उसके प्रायश्चित्तों की वेदना पूर्वक खोज कर रहे हैं। ऊपर युक्त उदाहरणों में ये सब बातें विशेष रूप से आप सब के लिये समान मनन योग्य हैं। पुनः जो जितना अधिक विचार करेंगे, वे उतना ही अधिक लाभ लेंगे।

क़ुरान तथा स्त्री जाति

१—इस से पूर्व हम स्त्री जाति के सम्बन्ध में यह लिख चुके हैं कि श्री इस्लाम के पहले अरब में भी उस की वही अवस्था थी जो कि उपस्थित शूद्रों सहित ऊपर युक्त हिन्दू शास्त्रों में आप स्वयं देख चुके हैं। अब इस्लाम के प्रधान धर्म शास्त्र श्री क़ुरान में इस के सङ्ग, कैसा व्यवहार होना चाहिये ? इसे आप यहां अवलोकन करें।

(क) यह तुम सब की जननी है—पहले बताया जा चुका है कि अधिकांश सभ्यता की ठेकेदार जातियाँ इस स्त्री जाति को मनुष्यता रहित निर्जीव पशु अथवा साक्षात शैतान समझा करती थीं, जैसा कि प्राच्य दिगवासी अंग्रेज़ आदि जातियों के पुरातन इतिहासों से जाना जाता है। इस अन्याय बुद्धि के विपक्ष यह स्त्री जाति मनुष्य मात्र की जननी है, इस बात को सब से पहले श्री क़ुरान ने बल पूर्वक घोषित किया तथा इसी के अनुसार श्री मुहम्मद महोदय आदि इस्लाम प्रचारकों ने उसका आदर योग्य समर्थन किया। देखो क़ुरान २६।१४ "या अय्यो हन्नासो" से "अतक़ा कुम्" पर्यन्त।

अर्थात—हे लोगो ! हमने तुम सब को एक ही नर तथा एक ही नारी से उत्पन्न किया, उसके पश्चात्, हम ही ने तुम्हें नाना यूथों तथा वंशावलियों में विभाजित कर दिया, ताकि तुम परस्पर एक दूसरे की उचित चीन्ह पहचान कर सको, सावधान ! प्रभु के निकट तुम में से वही अधिक सम्मान के योग्य समझा जावेगा जो भय पूर्वक उसकी निज आज्ञाओं का उचित पालन करेगा।

इसमें स्त्री जाति को समस्त मनुष्य जातियों की जननी होने का सौभाग्य पूर्वक अधिकार प्रदान किया है। एवं दूसरी सब से निराली अपूर्वता युक्त यह बात कही गई है कि प्रभु के निकट

तुम में से अधिक सम्मान के योग्य वही व्यक्ति हो सकता है, जो भय पूर्वक उस की सब आज्ञाओं का पूरा २ पालन करे। प्रभु के इस कथन ने स्त्री जाति को भी उस के निज सम्मानाधिकार का वैसा ही अधिकारी बना दिया, जैसा पूर्व कालीन नाना यूथ अपने को समझते थे।

श्री मुहम्मद का अनुमोदन—पुनः सूक्ति संग्रहों की नाना सूक्तियों से इसका पुष्ट अनुमोदन होता है कि श्री मुहम्मद महोदय स्त्री जाति का विशेष रूप से सम्मान करते तथा दया पूर्वक उन से बहुधा व्यवहार करने का अधिक उपदेश देते थे। जैसा कि श्री अली के मार्ग से इब्ने असाकिर ने एक प्रसिद्ध सूक्ति उद्धृत की है कि श्री मुहम्मद प्रायः ऐसा कहा करते थे कि "स्त्रियों का सम्मान वही करता है जो स्वयं सभ्य, विशुद्ध आत्मा भी हो, अन्यथा उनकी निन्दा करने वाले प्रायः ये दुर्आत्मा ही होते हैं"।

(ख) ईश्वर सब का परिपालक तथा समान रक्षक है—फिर स्त्री जाति के सम्बन्ध में यह भी आप पढ़ चुके हैं कि उन्हें लोग प्रायः मानुषी सम्बन्ध रहित, गाय बैल के समान व्यवहार मात्र का एक साधारण साधन मानते थे, उनकी इच्छानुसार उनका रहन सहन, खान पान, एवं उनके घरों में उनका चिराचिर वास रहता था, पुरुषों की भान्ति घरों वा जातियों से उनका कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं था, इत्यादि।

इन अनेक युक्ति हीन प्रथाओं के विरुद्ध अब आप श्री क़ुरान ४/१२ की निम्न आयत को ध्यान पूर्वक स्वाध्याय करें "या अय्यो हन्नासुत्तक़ू" से "रक़ीबा" पर्यन्त

"हे लोगों, तुम अपने परिपालक प्रभु से डरो, जिस ने तुम सब को एक जान से उत्पन्न किया। पुनः उसी ने उसका जोड़ा भी उसी से उत्पन्न किया, फिर उसी ने उन दोनों से नाना स्त्री पुरुष फैला दिये, तुम उस ईश्वर से डरो जिस का तुम स्वयं एक दूसरे को भय दिलाते हो और सम्बन्धियों का भी अवश्य ध्यान रखो हेतु अल्लाह तुम सब का समान रक्षक है"।

इसका सुन्दर अनुमोदन श्री मुहम्मद के इस प्रेम सम्पन्न अपूर्व कथन से भी होता है "अल् खल्क़ो इयालुल्लाहे" अर्थात यह समस्त जगत उस प्रभु का कुटुमवत रक्षा पात्र है।

इन (क, ख) नामक दोनों प्रमाणों के प्रकाश में उक्त स्त्री, पुरुष दोनों ही प्रभु राज्य में समान अधिकारी सिद्ध होते हैं। पुनः उन दोनों ही को प्रभु भय पूर्वक अपने उन सम्बन्धों की भी पूरी रक्षा उचित है कि जिन का प्रभु ने उन्हें स्वयं स्थिर रखने का खुला आदेश किया है। कृपया इस प्रकार आप इन स्थालों से स्त्री पुरुषों का वह घनिष्ट सम्बन्ध अनुभव करें जिस का कि इस्लाम से पहले प्रायः अभाव ही सा हो चुका था।

२—स्त्रियों का धर्माधिकार—फिर यह भी दिखाया जा चुका है कि इस्लाम के पहले

प्राय: अरब आदि अनेक प्रदेशों में उपस्थित हिन्दुओं ही की भान्ति स्त्रियों को धर्म में कोई अधिकार न था, बहुधा जातियां ऐसी भी थीं जो उन्हें उनके अपने धर्माधिकार से अपने मनोकल्पित विधानानुसार बल पूर्वक दण्ड देकर हिन्दुओं की तरह बलात्कार शुभ कर्मों से रोक रखती थीं, उनके पुस्तक पाठ को वे कभी सहन न करती थीं, स्त्री जाति में पुरुषों की भान्ति श्रद्धा तथा विश्वास पूर्ण भक्ति साधन "निश्चय" है, इसे वे प्रत्येक्ष में अस्वीकार करते थे, श्रद्धा, विश्वास के पूर्ण अधिकारी केवल पुरुष ही हैं. इत्यादि बातों पर प्राय: उस समय समूह रूप से धर्माधिकारियों का अधिक विश्वास था।

अब उन्हीं स्त्रियों के इस धर्माधिकार सम्बन्ध में श्री क़ुरान का अपना क्या मत है? सो उसे आप यहां देखिये।

क—इस्लाम धर्म में दोनों को समान अधिकार है—क़ुरान २२/२ में लिखा है कि—

"नि:सन्देह मुस्लिम पुरुषों तथा मुस्लिम स्त्रियों, विश्वासी पुरुषों तथा विश्वासी स्त्रियों, आज्ञा पालक पुरुषों तथा आज्ञा पालिका स्त्रियों, सत्यवादी पुरुषों तथा सत्य वादिनी स्त्रियों, सहन शील पुरुषों तथा सहन शीला स्त्रियों, भक्त पुरुषों तथा भक्तन स्त्रियों, दानी पुरुषों तथा दान शीला स्त्रियों, व्रत धारी पुरुषों तथा व्रती स्त्रियों, इन्द्रिय दमन कारी पुरुषों तथा दमन सहित इन्द्रिय रक्षिका स्त्रियों, एवं प्रभु स्मरणी पुरुषों तथा प्रभु स्मरण सम्पन्न स्त्रियों के लिये उस प्रभु ने उनकी स्वतन्त्रता पूर्वक उनके लिये भारी २ पुरस्कार उपस्थित कर रखे हैं"। देखो ("इन्नल् मुस्लेमीन वल् मुस्लेमाते" से "अज्रन्न अज़ीमा" पर्यन्त)।

अब इस स्थल पर आप स्वयं विचार करें कि श्री क़ुरान की इस एक ही आयत ने मूल धर्म में स्त्रियों को पुरुषों के साथ २ कहां तक धर्माधिकार प्रदान का खुला वर्णन किया है। इस में विशेष ध्यान देने योग्य अमूल्य वस्तु उनके अपने पृथक २ नाम ही हैं, जिन से आप यह अनुमान कर सकते हैं कि यह धर्माधिकार वास्तव में इस्लामातिरिक्त पहले किसी देश, धर्म वा जाति में था ही नहीं।

इस से सिद्ध हुआ कि इस उदार धर्माधिकार की विशाल दाग़ बेल केवल इस्लाम ही से आरम्भ होती है। यद्यपि आज कल इस पक्ष के भी कुछ लोग अवश्य दृष्टि गोचर होते हैं। परन्तु हमारा विश्वास है कि वे प्रलय पर्यन्त भी इस एक ही आयत में वर्णित अधिकारों की वह पूर्त्ति कदापि न कर पायेंगे जिसके द्वारा श्री मुहम्मद ने थोड़े ही काल में इस अबला जाति को मोक्ष पर्यन्त पहुँचा दिया, यही श्री क़ुरान के वे सामान्य उपकार हैं कि जिन्हें ऐतिहासिक दृष्टि से ही सही परन्तु प्रत्येक क़ुरान पाठी को क़ुरान पाठ से पहले भरसक जानने की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

इस में श्री क़ुरान ने जैसे आस्तिक पुरुषों को "मुस्लेमीन" कहा वैसे ही आस्तिकता युक्त स्त्रियों को "मुस्लेमात" कहा। पुनः क्रमशः—यदि पुरुषों को "मुऽमेनीन" (ईमानदार), कहा तो स्त्रियां को भी "मूऽमेनात" (अर्थात ईमानदार), ही कहा। इसी प्रकार क़ानेतीन, क़ानेतात। सादेक़ीन, सादेक़ात। साबेरीन, साबेरात। ख़ाशेईन, ख़ाशेआत। मुतसद्‌देक़ीन, मुतसद्‌देक़ात। साइए मीन साइए मात। हाफ़ेज़ीन, हाफ़ेज़ात। ज़ाकेरीन, ज़ाकेरात। ये धर्माधिकार सूचक सब नाम प्रायः समान ही दिये गये हैं, और इन्हीं नामों के अन्तर्गत प्रायः वे सब कृत्य आ जाते हैं कि जिन्हें हम आप प्रायः शास्त्रीय परिभाषा में "धर्माधिकार" कहते हैं। अतः यह बात सिद्ध हो गई कि जो धर्माधिकार पहले स्त्री जाति को प्राप्त न थे वे उन्हें श्री क़ुरान के समय इस्लाम द्वारा पूर्ण रूप से प्राप्त हुए।

ख—इस्लाम धर्म कर्त्तव्य प्रधान है—पुनः यह भी ज्ञानना चाहिये कि इस्लाम धर्म अन्य धर्मों की भान्ति जन्मादिक की मुख्यता को स्वीकार नहीं करता, अपितु इसके निकट उसके समस्त सिद्धान्तों की नींव में विशुद्ध कर्म की मुख्यता प्रधान है। मुस्लिम होने के पश्चात् स्त्री हो अथवा पुरुष उनके कर्मों का फल केवल उनके शुभाशुभ कृत्यानुसार ही होगा। इसी भाव से क़ुरान ने इन बातों को बड़ी स्पष्टता के साथ अनेक स्थलों में वर्णन किया है, उदाहरण के लिये उन में से दो एक स्थलों को आप यहां भी देख सकते हैं।

यथा—(१)—व मँय्यऽमल् मिनस्सालेहाते मिन ज़क़रिन्न औ उन्सा व हुव मुऽमेनुन्न फ़उलाइएक यद्‌ख़ुलूनल् जन्नत वला युज़्लमून नक़ीरा" क़ुरान ५।१५

(२) "व मन् अमेल सालेहम्मिन् ज़ुकरिन्न औ उन्सा व हुव मुऽमेनुन्न फ़ल नुह्‌येयन्नहू ह्यातन्न तय्येबतन्न वल नज्‌ज़ेयन्नहुम् बे अह्‌सने मा कानू यऽमलून्" (क़ुरान१४/१६)।

(३) व मन् अमेल सालेहम्मिन् ज़ुकरिन्न औ उन्सा व हुव मुऽमेनुन्न फ़उलाइए क यद्‌ख़ुलूनल् जन्नत युर्ज़क़ून फ़ीहा बे ग़ैरे हिसाब" (क़ुरान २४/१०)।

अर्थ—१—स्त्री पुरुषों में से जो कोई भी शुभ कर्म करेगा वही यहां "मोमिन" तथा अन्त में स्वर्गाधिकारी होगा, ऐसे स्त्री पुरुषों का कोई भी अधिकार निष्फल नहीं होगा।

२—स्त्री पुरुषों में से जिस किसी ने भी जो कोई शुभ कर्म किया उसका डबल फल समझो, संसार में उसे पवित्र जीवन सहित "मोमिन" नाम की शुभ पदवी प्राप्त होगी तथा परलोक में उन्हें उन्हीं कृत्यों के उपलक्ष में और भी नाना उत्तम फल प्राप्त होंगे।

३—स्त्री पुरुषों में से जो कोई भी शुभ कर्म करता है उन कर्मों के कारण पहले वे "मोमिन" पुनः स्वर्गाधिकार प्राप्त कर उसमें विना तुलना अनन्त पदार्थों के भोग पायेंगे।

उक्त स्थलों से स्पष्ट हुआ कि क़ुरान के श्री प्रभु स्त्री पुरुष दोनों ही को उनके धर्माधिकार

सहित धर्म कृतयों का भी न्याय पूर्वक पृथक २ फल देंगे। जो जैसा करेगा वह वैसा ही भरेगा, इस में स्त्रियों का स्वर्गाधिकार भी पुरुषों के समान ही है, यह क़ुरान की अपने पूर्व धर्मों से समयानुसार अधिक विशेषता है।

ग—**स्त्रियों के शुभ कर्म नष्ट न होंगे**—पुनः वे लोग जो इस पक्ष में थे कि स्त्रियों को शुभ कर्मों का अधिकार ही नहीं, उनका खण्डन श्री क़ुरान ५।१५ में "लैस बे अमानिय्योकुम्" से ऊपर युक्त "नक़ीरा" पर्यन्त में देखें।

तथा स्त्रियों के किये कर्म नष्ट नहीं होते, यह बात आप क़ुरान ४।११ की इस आयत "फ़स्तजाब लहुम् रब्बुहुम् अन्नी ला उज़ीओ अमल आमेलिम्मिन् कुम्मिन् ज़करिन्न औ उन्सा बऽज़ो कुम्मिन् बड़ऽज़िन्न" में अवलोकन करें।

अर्थात्—उनका प्रभु आज्ञा करता है कि मैं तुम में से किसी शुभ कर्मा स्त्री पुरुष के किये कर्मों को नष्ट नहीं होने दूंगा, हेतु तुम एक दूसरे के अङ्ग भूत ही हो।

इस से स्पष्ट हुआ कि यह स्त्री जाति अपने कर्माधिकार में पुरुष सहित उनके फलाधिकार में भी दोनों एक समान हैं।

घ—**यह प्रत्येक शुभ कर्म में एक दूसरे के सहाई हैं**—अब जिन लोगों का यह विचार था कि स्त्री जाति को पुरुषों के सङ्ग धर्म सम्मेलनों, पूजा स्थलों किम्वा अन्य धर्म सङ्घों में सम्मिलित होने का कोई अधिकार नहीं, उन के विरुद्ध आप श्री क़ुरान १०।१५ की निम्न आयत और देखें "वल् मुऽमेनून वल् मुऽमेनातो" से "इन्नल्लाह अज़ीज़ुन्न हकीम्" पर्यन्त—अर्थात्—मोमिन पुरुष तथा मोमिन स्त्रियां ये परस्पर एक दूसरे के सहाई हैं। ये मिल कर कल्याण की आज्ञा करते तथा) अकल्याण से रोकते हैं इत्यादि।

इस आयत में स्त्रियों को प्रायः वे सारे अधिकार दे दिये गये हैं कि जिनसे पहले ये निश्चित रूप से वंचित थीं। स्त्रियां पुरुषों की सहकारिन हैं तथा शुभ अशुभ कर्मों में भी वे पुरुषों की भान्ति विधि निषेध का समयानुसार उपयोग कर सकती हैं, यह उनके प्रति इस्लाम की मुख्य विशेषता है। इससे आप जान गये कि स्त्रियों को अब धर्म मन्दिरों, कथा स्थलों, वृहत धर्म सम्मेलनों तथा समस्त राज नैतिक क्षेत्रों में प्रवेश का भी पूरा अधिकार प्राप्त होगया है। तात्पर्य यह कि अब ये युद्ध को छोड़ शेष सब जीवनोपयोगी कार्यों को पुरुषों के सहवास में यथा योग्य जब चाहें तब कर सकती हैं।

इस्लामी साहित्य में इन ऊपर कथित स्वतन्त्रता सम्पन्न अधिकारों की पूरी चर्चा की गई है। जो सज्जन चाहें इस विषय के मुख्य ग्रन्थों को देख अपना हर प्रकार से उचित सन्तोष लाभ कर सकते हैं।

ङ—पुण्याधिकार में समानता—फिर कुछ लोग ऐसे भी थे जो स्त्रियों को स्वर्गाधिकार न देकर उनके पुण्य कार्यों को भी स्वीकार नहीं करते थे। जैसा कि इस से पहले आप देख, पढ़, जान चुके हैं। अब उन्हीं स्त्रियों को इस स्थल पर स्वर्गाधिकार सहित स्थूल, सूक्ष्म दोनों ही प्रकार के पुण्य फलों की प्राप्ति होती है, ऐसा आप यहां ध्यान पूर्वक अवलोकन करें।

"वअ़दल्ला हुल् मुऽमेनीन वल् मुऽमेनाते" से पूरा रुकूअ़ क़ुरान १०/१५—अर्थात—ईश्वर ने विश्वासी स्त्री पुरुषों से प्रण किया है कि वह उन्हें स्वर्ग में ऐसी वाटिकायें देंगे कि जिनके नीचे नहरें बहती होंगी, तथा उस अ़दन नामक स्वर्ग में उनके रहने को सदा पवित्र सदन होंगे,...इत्यादि।

इस स्थल से कई बातें सिद्ध होती हैं, (१) जैसे पुरुषों के लिये स्वर्ग वास का अधिकार है वैसे ही स्त्रियों के लिये भी है (२) जैसे पुरुष स्वर्ग वास का सदा भोग करेंगे वैसे ही स्त्रियां भी उस के भोगों से लाभान्वित होंगी (३) उस स्वर्ग में जैसे पुरुष पवित्र सदनों में रहेंगे वैसे ही स्त्रियां भी रहेंगी (४) वाटिकायें भी प्रायः समान ही होंगी (५) जैसे पुरुषों की वाटिकाओं के नीचे नहरें बहती होंगी वैसे ही स्त्रियों की वाटिकाओं के नीचे भी बहेंगी (६) यह प्रण प्रभु ने जैसा पुरुषों से किया वैसा ही स्त्रियों से भी समझो (७) पुनः इन वचन दिये गये स्त्री पुरुषों के सुख स्थान का शुभ नाम "अ़दन" होगा ऐसा आप को विना खटके ही स्वीकार करना चाहिये......इत्यादि।

ये स्त्री जाति के वे अधिकार हैं जो दया मय प्रभु उन्हें पहले ही प्रदान करने का वचन दे चुके हैं, परन्तु शरीर त्याग के पश्चात शुभ कर्मा स्त्री पुरुष दोनों ही सम्मिलित रूप से उन्हें सुख पूर्वक भोग करेंगे, ऐसा आप इनके सम्बन्ध में श्री इस्लाम धर्म की यह मुख्य व्यवस्था समझें।

च—सपत्नी स्वर्ग वास का अनुमोदन—अब इस सपत्नी स्वर्ग वास अनुमोदन के दो एक उदाहरण भी आप यहां अनुभव करें।

१—"अल्लज़ीन आमनू बेआयातेना, व कानू मुस्लेमीन, उद् ख़ुलुल् जन्नत अन्तुम व अज़्वाजोकुम, तुह् बरून" क़ुरान २५/१३।

२—"हुवल्लज़ीऽ अन्ज़लस्सकीनत" से "लेयुद् ख़ेलल् मुऽमेनीन वल् मुऽमेनाते जन्नातिन्न तज्री मिन् तह् ते हल् अन्हारो ख़ाले़दीन फ़ीहा...अ़ज़ीमन्न" तक, क़ुरान २६/६।

३—"इन्नल् मुत्तक़ीन" से "वल्लज़ीन आमनू वत्तबअ़तहुम् ज़ुर्रिय्यतो हुम् बे ईमानिन्न अल्हक़्ना बेहिम ज़ुर्रिय्यत हुम्"...इत्यादि। क़ुरान २७/३।

४—"अल्लज़ीन यूफ़ून" से...जन्नातो अ़दनिँय्यद्ख़ुलूनहा व मन् सलह मिन आबाऽए हिम् व अज़्वाजेहिम् व ज़ुर्रिय्यातेहिम्...उक़्बद्दार" पर्यन्त क़ुरान १३/६।

इन चार स्थलों में क्रमशः पहले प्रमाण से मुस्लिम (विश्वासी) स्त्री पुरुषों को सत्कार पूर्वक एक सङ्ग स्वर्ग प्रवेश की आज्ञा होगी।

दूसरे में उन्हीं स्त्री पुरुषों को मोमिन तथा मौमिनः नाम से उसी स्वर्ग में सदा रहने के लिये प्रवेश कराया जावेगा।

तीसरे में उन्हीं इन्द्रिय दमन कारी दम्पति की अमुक सन्तान भी उनके सङ्ग स्वर्ग में रहेगी। तथा चौथे प्रमाण में यह दिखाया गया है कि भद्र पुरुषों के शुभ कर्मा पितर, पुत्र तथा स्त्रियां भी उनके सङ्ग स्वर्ग वास करेंगे, और इस स्वर्ग का नाम पूर्ववत् यहां भी "अदून" ही है।

छ—स्वर्ग में जाया पति दोनों सम वयस् होंगे—श्री क़ुरान २७।१४ में कुछ विशेष पुरुषों के भाग विभाग सहित उनके मुख्य पदार्थों का भी वर्णन किया है, उन में से स्थल की योग्यता तथा आपकी विशेष ज्ञान कारी के लिये हम निम्न वाक्यों को यहां उपस्थित करते हैं।

"व फ़ो रो, शिम्मर्फ़ूअतिन्न इन्ना३ अन् शऽना हुन्न इन्शा३ अन्न" से "लेअस् हाबिल् यमीन" तक (क़ुरान २७।१४)

"उपस्थित संसार में भद्रता पूर्वक सुभद्रा स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाले पुरुषों को हम विना विलम्ब ही उनमें उठा खड़ा करेंगे। उनकी पूर्व प्रिय स्त्रियों को भी पूर्ववत अक्षत योनि तथा वयस में उनके समान ही बना देंगे।

यहाँ स्वर्ग वासी स्त्रियाँ अपने संसारी पतियों के समान ही युवा होंगी, यह आप यहाँ अवश्य स्मरण रखें अधिक विस्तार के लिये प्रमुख उक्तियों का आश्रय अनिवार्य है।

ज—स्त्री पुरुषों के मुख्य भाग—इस्लाम ने कर्म विभेद की दृष्टि से स्त्री पुरुषों को भी दो ही मुख्य भागों में विभक्त किया है, पवित्र तथा अपवित्र। पवित्र स्त्री पुरुषों के जोड़ों को तय्यिब, तय्येबात तथा अपवित्र जोड़ों को ख़बीस, ख़बीसात कहकर वर्णन किया है। देखो क़ुरान १८।६ "अल् ख़बीसातो लिल् ख़बीसीन वल् ख़बीसून लिल् ख़बीसाते वत्तय्येबाता लित्तय्येबीन वत्तय्येबून लित्तय्येबाते" अर्थात—अपवित्रा स्त्रियां, अपवित्र पुरुषों के लिये, अपवित्र पुरुष अपवित्रा स्त्रियों ही के लिये होते हैं, तथा पवित्रा स्त्रियां पवित्र पुरुषों के लिये, पवित्र पुरुष पवित्रा स्त्रियों के लिये होते हैं।

इस भाव से प्रत्येक स्त्री पुरुष को यथा योग्य विचार करके ही विवाह सम्बन्ध करना चाहिये, अन्यथा संसारी जीवन अवश्य कष्ट मय होगा, ऐसा आप उक्त उदाहरण का स्फुट तात्पर्य समझें।

पुनः क़ुरान १०।१५ में "अल् मुनाफ़ेक़ून वल् मुनाफ़ेक़ातो" से "अज़ाबुम्मु क़ीमुन्न" पर्यन्त, उन स्त्री पुरुषों का वर्णन आया है जिन्हें श्री क़ुरान के उपस्थित शब्दों में मुनाफ़िक़ मुनाफ़ेक़ात, फ़ासिक़ फ़ासेक़ात, अथवा काफ़िर काफ़ेरात कहा जा सकता है। ये जोड़े ऊपर युक्त

मोमिन मोमेनात, मुस्लिम (आस्तिक) दल के पक्के विरोधी हैं, जैसे ऊपर कथित मोमिन मोमेनात आपस में एक दूसरे के सहाई कहे गये हैं, वैसे ही यहां नास्तिक जोड़े आपस में एक दूसरे के सहकारी सहायक वर्णित हुये हैं। मोमिन मोमेनात को उनके शुभ कर्मों में एक दूसरे की सहायता करने के उपलक्ष में जैसे स्वर्ग प्राप्त होगा, वैसे ही इन्हें अपने इन बुरे कर्मों में एक दूसरे की सहायता के उपलक्ष में कष्ट दाई नरक प्राप्त होगा। इस लिये कर्म की अपेक्षा जैसे पुरुषों में अच्छे बुरे लोग होते हैं वैसे ही स्त्रियों में भी अच्छी बुरी स्त्रियां अवश्य होती हैं। यह सिद्धान्त आपको इस स्थल पर विशेष रूप से मनन करना चाहिये।

झ—**गृहस्थ सम्बन्धी मुस्लिम जीवन का उच्चादर्श**—अब जब कि यह ज्ञात हो गया कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की भान्ति अच्छी बुरी हुआ करती हैं, तब हमें कैसी स्त्रियों की इच्छा करनी चाहिये, यह बात अब आप श्री क़ुरान १६/४ में देखें। मुस्लिम वृत्ति गृहस्थ स्त्री पुरुषों को आपस में कैसे उत्तम विचार रखने चाहियें? इस सम्बन्ध में आप निम्न शब्दों को ध्यान पूर्वक अवलोकन करें।

"वल्लज़ीन यक़ूलून" से "इमामा" पर्यन्त—अर्थात्—वे लोग जो यह कहते हैं कि हे हमारे प्रभो! हमारी स्त्रियों तथा हमारी सन्तानों की ओर से हमारे नेत्रों में शीतलता का वास हो तथा हम जितेन्द्रियों के मुख्य "इमाम" (मुखिया) हों इत्यादि।

इस प्रार्थना रूपी उपमा से प्रत्येक मुस्लिम जान सकता है कि उसकी स्त्री सहित सन्तान कैसी? उत्तम होनी चाहिये।

ञ—**बन्धु बान्धवों को उपदेश**—अब जब कि अच्छे कुटुम्ब के स्वामी बन गये, तब इनका दायित्व क्या होना चाहिये? इस को भी आप निम्न स्थल में देखें।

"इन्नल्लाह यऽमो, रो" से "मातफ़्अलून" पर्यन्त क़ुरान १४।१६। अर्थात्—प्रभु आज्ञा करते हैं कि अब तुम सर्व साधारण के साथ न्याय करो, उन्हें अपना अनुग्रहीत बनाओ, बन्धु बान्धवों की सहायता करो, उन्हें लज्जा रहित कार्य्यों से वर्जित रखो, उन्हें अनुचित गति से रोको, अन्याय पूर्वक उपद्रव तथा अत्याचार सहित नकारों से भी वर्जित रखो, ये उपदेश पूर्ण बातें हमने तुम्हें इस लिये कही हैं कि तुम भी उनकी उपदेश पूर्वक उत्तम चर्चा करो इत्यादि।

ट—**विश्वास पूर्ण स्त्री पुरुष को कोई कष्ट न दो**—इन आज्ञा पालक स्त्री पुरुषों को किसी प्रकार का कोई कष्ट न दो "वल्लज़ीन युऽज़ूनल् मुऽमेनीन वल् मुऽमेनाते बे ग़ैरे मक्तसबू फ़क़दिह् तमलू बुहतानँव्व इस्मम्मुबीना" क़ुरान २२।४

अर्थात्—जो लोग ऐसे विशुद्ध विश्वास सम्पन्न स्त्री पुरुषों पर विना किये दोषों का आरोपण करते हैं वे जान बूझ कर खुले अपनी गर्दनों पर मिथ्या दोषों का भारी बोझ लेते हैं।

इस से सिद्ध हुआ कि ऐसे प्रभु भक्त स्त्री पुरुषों को किसी प्रकार का कोई कष्ट न देना चाहिये।

ठ—विश्वास पूर्ण स्त्री पुरुषों का विशेष महत्व—कुरान ११।२ में एक आयत वर्णित हुई है, जिस का भाव यह है कि—"पूर्व विश्वासियों में से जिन्हों ने इस्लाम तथा उसके मुख्य प्रचारक श्री मुहम्मद महोदय की पूर्ण सहायता की है उन से ईश्वर तथा वे ईश्वर से प्रसन्न हुये। पुनः ईश्वर की इस प्रसन्नता में वे लोग भी सम्मिलित हैं कि जिन्हों ने भलाई के साथ उनका योग्य अनुसरण किया, इस प्रकार के पहले विश्वास सम्पन्न तथा पूर्ण सहायता प्रदान करने वालों में से प्रौढ़ पुरुष श्री महाशय अबूबक्र, युवकों में से श्री अली, स्त्रियों में से श्री महाराज्ञी खदीजः तथा दासों में से श्री ज़ैद के शुभ नाम स्मरणीय हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इन में से प्रत्येक व्यक्ति अपनी २ श्रेणी में पहला विश्वासी है। पुनः श्री मुहम्मद के सङ्ग मक्कः से मदीनः जाने वाले (मुहाजेरीन=प्रभु आज्ञा पालन के निमित्त अपने २ घर बार को छोड़नेवाले) तथा अन्सार (श्रीमुहम्मद सहित उन सबके पूर्व सहायक) ये समस्त पूर्व विश्वासी "अस्साबेकूनल् अव्वलून" में सम्मिलित हैं।

पहलों की संख्या दश तथा दूसरों की ५+१२+७०=८७+१०=९७ होती है। ये उक्त संख्यक स्त्री, दास तथा स्वतन्त्र स्त्री पुरुषों सहित सब के सब इस्लाम धर्म में श्री मुहम्मद महोदय के पश्चात् द्वितीय नम्बर के आदर भाजन समझे जाते हैं, ऐसा आप परम्परा से चालु मुस्लिम विद्वानों का सुनिश्चत मत जानें।

इस से आप समझ सकते हैं कि मूल इस्लाम धर्म में स्त्री तथा नाम के दासों का कितना उच्च स्थान है। उक्त मूल आयत के निज शब्द इस प्रकार हैं।

"वस्साबेकू नल् अव्वलून मिनल् मुहाजेरीन वल अन्सारे वल्लज़ीं नत्तबऊ हुम् बे इह् सा-निर्रज़ियल्लाहो अन्हुम् व रज़ू अन्हो व अद लहुम् जन्नातिन्न तज्री तहतहल् अन्हारो खालेदीन फ़ीहा अबदा ज़ालेकल् फ़ौज़ुल् अज़ीम" कुरान ११/२।

अर्थात—और मुहाजिर व अन्सार में से जिन लोगों ने पहले घर बार छोड़े तथा पहले इस्लाम को स्वीकार किया, पुनः जिन्हों ने भलाई के साथ उनका अनुसरण किया उनसे प्रभु प्रसन्न हुए तथा वे प्रभु से प्रसन्न रहे। उन्हीं लोगों के लिये प्रभु ने वाटिकायें उपस्थित कर रखी हैं, जिन के नीचे नहरें बह रही हैं, वे उन में सदा वास करेंगे। मनुष्योपयोगी जीवन की यही भारी सफलता है।

ड—स्त्रियों का दाय भाग—इस से पूर्व यह भी आप देख चुके हैं कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा बपौती में भी कोई अधिकार न था, इतना ही नहीं अपितु उन्हें उन के अपने उपार्जित धनों पर भी स्वत्व प्राप्त न था जो उपस्थित समय में साधारण भिक्षु अथवा चाकर

वृत्ति पुरुषों को उपलब्ध है। इस कठोर प्रथा को भी इस्लाम ही ने आकर उठाया, देखो .कुरान ४/१२।

"लिर्रिजाले नसीबु म्मिम्मा तरकल् वालेदाने वल् अक़्रबून व लिन्नेसाइए नसीबु म्मिम्मा तरकल् वालेदाने वल् अक़्रबून मिम्मा क़ल्ल मिन्हो औ कसु.र नसीबम्मफ़रूज़ा"।

अर्थात्—माता पिता व सम्बन्धियों के छोड़े धन में पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों ही का भाग है, वह छोड़ा धन अधिक हो व कम, यह नियम हमारा ही चलाया हुआ है कि उस में दोनों को (दाय) भाग मिले।

अब इसी छोड़े धन में पुत्री, पुत्रों अथवा स्त्री आदि का कितना २ भाग होना चाहिये यह आप इसके पश्चात् वाले रुकूअ़ १३ में देखें।

ढ—स्वतन्त्र भागों की रक्षा—इस के उपरान्त .कुरान ५/२ से आप स्त्री पुरुषों के स्वतन्त्र धनों का ब्योरा देखें।

"लिर्रिजाले नसीबुम्मिम्मक् तसबू व लिन्निसाइए नसीबुम्मिम्मक तसब्न"।

अर्थात —पुरुषों के लिये उनके अपने कृत्यानुसार तथा स्त्रियों के लिये उनके निज कृत्यानुसार ही यह धन विभाग स्थिर हैं।

इस विधान से स्त्री पुरुषों के स्वतन्त्र स्थिर धनों की यहां पृथक २ रक्षा की गई है। शेष धन में और भी किन २ लोगों का कितना २ अधिकार है, यह भी बड़े विस्तार के साथ वर्णित हुआ है। आशा है आगे चल कर पाठक उन्हें अपने २ स्थान पर विधिवत देखेंगे।

ये इस्लाम के वे खुले उपकार हैं जिन्हें बहुधा लोग अपनी अज्ञानता के कारण अभी तक जानते ही नहीं।

ण—स्त्रियाँ दासियाँ नहीं अपितु वे हमारी पूर्ण प्रेमपात्रा हैं—इस से पूर्व यह भी आप जान चुके हैं कि प्राचीन काल में स्त्रियां केवल दासी भाव ही से रखी जाती थीं, उनके विवाह होने पर भी ये दुर्भावनायें उनके प्रति ज्यूं की त्यूं ही बनी रहती थीं, पुनः यह रोग कुछ अ़रब के अशिक्षित समुदायों ही में न था, अपितु उनके आस पास की बड़ी २ जातियां भी इस दुर्भाव के वशीभूत हो चुकी थीं। सर्वसाधारण तो स्त्रीमात्र ही को परिचारिका समझते थे जैसा कि पूर्व सङ्केतों में आप स्वयं जान चुके हैं। इस अनर्गल कष्टदायनी प्रथा को भी इस्लामी विवाह ही ने दूर किया।

शादी के पश्चात् उनमें सच्चे दम्पति के शुभ भाव होने चाहिये, एक दूसरे से सहिष्णुतापूर्वक मेल, प्रेम, उच्च भाव सम्पन्न, उत्तम सन्तान की उत्पत्ति होनी चाहिये, इत्यादि जीवनोपयोगी नाना प्रकार की बहुमूल्य शिक्षा प्रदान की। स्त्री पुरुष में परस्पर कैसा प्रेम होना चाहिए ? इस का केवल एक उदाहरण आप यहां और भी देख सकते हैं।

"व मिन् आयातेही३ अन् ख़लक़ लकुम्मिन् अन्फ़ुसेकुम् अज़्वा जल्ले तस्कुनू३ इलैहा। वजअ़ल बैन कुम्मवद तँव्व रह् मतन्न इन्न फ़ी ज़ालेक लआयाति ल्लि क़ौमिँ य्यत फ़क्करून्" .क़ुरान २१/६।

अर्थात—प्रभु की प्रभुताई के अनेक चिन्हों में से यह एक है कि उसने तुम्हारे लिये तुम्ही में से तुम्हारा जोड़ा बना दिया ताकि तुम सुख चैन से उसके साथ रहो, पुनः इस निर्वाह के लिये हम ही ने तुम दोनों स्त्री पुरुष में दया सहित आदर्श मित्रता का संचार किया, निश्चय ही हमारे इस कथन में ध्यानियों के लिये सुबोध उपदेश हैं।

त—**स्त्री पुरुष की गार्हस्थ योग्यता**—इस्लाम ने धर्मानुसार जहां स्त्री को पुरुषों के साथ २ सब शुभ कर्मों में सम्मिलित कर उसे मोक्ष पर्यन्त के सम्पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये हैं, वहां उसकी स्वाभाविक निर्बलता का भी न्यायपूर्ण निर्णय किया है, स्त्री चूंकि पुरुष की अपेक्षा अधिक कोमल है, इसलिये उसकी बाल बच्चों सहित रक्षा का सारा भार उसके श्रम स्वभाव पति पर ही डाल दिया गया है। इस से एक गूना पुरुष का स्त्री पर कुछ विशेष महत्व अवश्य सिद्ध होता है, इसका वर्णन सङ्केतरूप से आप निम्न आयत में देख सकते हैं।

"वलहुन्न मिस्लु ल्लज़ी अ़लैहिन्न बिल् म.ऽरूफ़े व लिर्रिजाले अ़लैहिन्न दरजतुन्न" .क़ुरान २/१२।

अर्थात्—जैसे पुरुषों को स्त्रियों पर अधिकार है वैसे ही स्त्रियों को भी पुरुषों पर अधिकार हैं (परन्तु) फिर भी श्रेष्ठता में पुरुष स्त्रियों पर एक अंश विशेष श्रेष्ठता रखते हैं।

इस अंश विशेष की मुख्यता को आप उस के कारण सहित इस दूसरी आयत में देखें।

"अर्रिजालो क़व्वामून अ़ल न्निसा३ए बिमा फ़ज्ज़ल ल्लाहो ब.ऽज़हुम अ़ला ब.ऽज़िँव्व बेमा अन्फ़.क़ू मिन् अम्वालेहिम्" .क़ुरान ५/३।

अर्थात्—पुरुष स्त्रियों के रक्षक हैं, पुनः यह रक्षाधिकार भी उन्हें प्रभु की कृपा ही से प्राप्त हुआ है. फिर इस का हेतु यह कि वे अपने श्रम से उपार्जित धन को उनके लिये व्यय करते हैं, और ऐसा करने ही से एक को दूसरे पर उचित महत्व होता है।

इस स्थल पर गृहस्थ आश्रम का सारा बोझ पुरुष पर डाल कर एक प्रकार से उसे सच्चा गृहपति बना दिया गया है, इस में स्त्री सहित सब सन्तान की पूरी रक्षा पुरुष पर आ पड़ती है, इसी लिये पुरुष अपने इस दायित्व की दृष्टि से घर भर का अग्रगण्य अथवा प्रधान नेता कहा जाता है।

परन्तु पुरुष के इस महत्व के होते हुये भी स्त्री के निज अधिकार कम नहीं होते, जैसा कि बहुधा इस्लाम से अनभिज्ञ लोग समझते हैं, पुरुष इस आधिपत्य के कारण घर बार की सारी

आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भी निज स्त्री के स्वतन्त्र अधिकारों से उस समय तक विमुक्त नहीं होता जब तक कि वह उन्हें पूरे तौर पर चुकता नहीं करता—

पूर्व की अपेक्षा यह इस्लाम का स्त्रियों पर अपूर्व अनुग्रह है। स्वतन्त्र रूप से यदि स्त्री पुरुष से अधिक धनी हो तो भी पुरुष को उसके खान, पान का व्यय अवश्य ही देना होगा, फिर विवाह समय का नियत धन जिसे "महर" कहते हैं, यह भी देना ही होता है। यद्यपि विवाह के समय यह धन नियमानुसार नियत भी न हो तथापि उसे पुनः निश्चय कर अदा करना ही पड़ता है। इसमें अधिक से अधिक पुरुष यही कर सकता है कि उसे कुछ देर के बाद अदा करे, परन्तु पुरुष उस नियत धन को देवे ही नहीं यह इस्लाम धर्म को कभी भी स्वीकार नहीं।

इसके विपरीत अन्य जातियों में अब भी देखा जाता है कि बहुधा स्त्रियाँ उलटा यही धन अपने पतियों को दे देने के लिए बाध्य की जाती हैं। पुनः विवाह आदि के सम्बन्ध में पहले इनकी क्या कुछ दुर्दशा नहीं होती थी ? यह आप इस लेख के पूर्व भाग ही में देख चुके हैं, अब उसे सम्मुख रखते हुए यहाँ आप इनका उनसे समन्वयपूर्वक विचार करें ताकि यह आपको अच्छी तरह ज्ञात हो जावे कि इस्लाम ने इस स्त्री जाति का कितना उपकार किया।

३—कतिपय आक्षेपों के सुबोध उत्तर—उपस्थित समय में जो लोग मूल इस्लाम तथा उसके महत्वपूर्ण उपकारों से भली भाँति परिचित नहीं, वे प्रायः अपनी अज्ञानता के वशीभूत बहुधा असन्तोषपूर्वक इस विषय पर अधिक बल देते हैं कि इस्लाम चार चार स्त्रियों से विवाह करने की आज्ञा देता है, फिर पुरुष जब चाहे इच्छानुसार ही उन्हें तलाक़= त्याग पत्र भी दे सकता है, इत्यादि।

इन बिना समझी बातों को कहकर वह सिद्ध करना चाहते हैं कि मूल इस्लाम में स्त्रियों का कोई सत्कार नहीं। वास्तव में इस्लाम ने अन्य धर्मों की अपेक्षा स्त्रियों का कितना उपकार किया अथवा उनके इस सत्कार क्षेत्र को सम्मानपूर्वक कितना विस्तृत किया ? यह बात वही पुरुष अच्छी तरह जान सकता है कि जिसने सम्प्रति जातियों के इस्लाम पूर्वक इतिहासों को गवेषणापूर्वक स्वाध्याय किया है। जो इस्लाम के पूर्व की स्थिति नहीं जानता वह इस्लाम के किसी भी तथ्य को समझने में रंगों की पहचान में चक्षुहीन के समान असमर्थ है। हेतु इस्लाम सबका सुधारक तथा पूर्ण उपकारक है।

इसके मूल सिद्धान्त सदोष हैं अथवा निर्दोष ? यह आप ख्रीष्टि, यहूदी तथा प्राचीन अरबों के पूर्व कृत्यों से मिलाकर देख सकते हैं, क्योंकि इसने जो कुछ कहा, किया वे प्रायः इन सबको सम्बोधन करके ही कहा, सुना गया है। इन में उस समय क्या २ कमियाँ थीं ? यदि इनका आपको ठीक ठीक परिचय हो जावे, तब तो आप उक्त आक्षेपों की निर्मूलता

को स्वयं ही समझ जायेंगे, अन्यथा हम आपको अपने शब्दों में अवश्य ही समझायेंगे, ऐसी आप पूर्ण आशा रखें।

क-पहले समय की शादियाँ—पहले समय में शादियों के लिए कोई संख्या नियत न थी जैसा कि इससे पहले वर्णित हो चुका है। इस्लाम ने चार तक की आज्ञा दी, परन्तु ये चार क्योंकर हो सकती हैं? इनका अधिकारी कौन है? किस प्रकार से ये चार होनी चाहियें? इत्यादि नाना विषय इसमें समझने योग्य हैं।

१—पहले समय के लोगों में शादियों की संख्या नियत न थी परन्तु यह ठीक है कि वे एक दूसरे से अधिक स्त्रियाँ रखकर उस पर खुला अभिमान करते थे, भेड़ बकरियों की नाईं जिसके घर स्त्रियों की संख्या अधिक होती थी वही सबसे बड़ा पुरुष समझा जाता था। फिर जिन्हें वे अपनी स्त्रियाँ बना लेते थे उन्हें भेड़ बकरियों की नाईं जब चाहते थे अदला बदली भी कर लेते थे। उनके रहन-सहन, खान-पान व सम्मानपूर्वक व्यवहारों का कोई ठिकाना नहीं था। देखो हमारा पूर्व प्रकरण (क नम्बर—इस्लाम के पूर्व स्त्री जाति की दुर्दशा) इसके विपरीत इस्लाम ने सैकड़ों से घटा कर उसकी संख्या चार तक नियत कर दी। अब इन चार की संख्या को पहले तो उन सैकड़ों के सम्मुख रखकर तुलना करनी चाहिए कि इस्लाम में अधिक स्त्रियाँ रखने की बात है, अथवा यही अधिक संख्यक स्त्रियों की बात इस्लाम से पहले थी? दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि नियमानुसार इन चार को कौन रख सकता है? मैं समझता हूं इस सम्बन्ध में जिन लोगों ने मूल .कुरान का मननपूर्वक स्वाध्याय किया है वे भी इन चार में से एक ही के रखने पर बाध्य होंगे, क्योंकि उन चार के रखने में वे न्याय कर सकेंगे या नहीं? इसमें पूर्ण सन्देह है। इसलिए चार की आज्ञा होने पर भी एक समय एक ही स्त्री रखनी चाहिये यही अन्तिम सिद्धान्त स्थिर होगा।

२—इस्लाम ने एक ही समय चार पर्यन्त की आज्ञा अवश्य दी तथा इससे अधिक का पूरा निषेध किया पर जिन लोगों से न्याय सम्भव ही नहीं उन्हें एक ही स्त्री रखनी चाहिये, ऐसा उपस्थित .कुरान का स्पष्ट मत है।

इस्लाम ने एक से अधिक स्त्रियों की आज्ञा उन्हीं पुरुषों को दी है जिन्हें समयानुसार उनकी आवश्यकता भी है, बिना आवश्यकता पूर्ववत सब कोई चार चार रख सकते हैं, यह बात मूलतः .कुरान को स्वीकार ही नहीं।

फिर जो एक ही स्त्री का विधिवत पोषण नहीं कर सकते, उन्हें दो अथवा अधिक की आज्ञा हो ही नहीं सकती। हाँ जो उनके पालन पोषण तथा स्त्री धर्म के अनुसार उनसे पूरा पूरा न्याय कर सकते हैं वे एक से चार पर्यन्त के अधिकारी हो सकते हैं। पुनः वे लोग भी एक से अधिक स्त्रियां रख सकते हैं जिनकी पहली स्त्री से कोई सन्तान न होती हो, अथवा

उसे कोई ऐसा रोग लग गया हो कि जिससे उसकी सन्तान उत्पत्ति की आशा जाती रही हो। किम्वा शादी के पश्चात् बाँझ सिद्ध हो, इत्यादि हेतुओं की उपस्थिति में दूसरी, तीसरी व चौथी शादी पर्यन्त कर सकता है। जो लोग ऐसा न समझ कर केवल चार मात्र की आज्ञा ही समझ कर आक्षेप करते हैं उन्हें यहां अपनी इस भूल का अवश्य सुधार करना चाहिये।

क़ुरानी आज्ञा—अब आप श्री क़ुरान का वह स्थल देखें कि जहां पुरुषों को चार २ स्त्रियों तक विवाह की आज्ञा दी गई है, और जिसे न समझ कर बहुधा लोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को इस्लाम में भी पूर्व वत ही हीन समझते हैं। उक्त स्थल के मूल शब्द इस प्रकार हैं।

"फ़न्केहू मातात्र लकुम्मिनन्ने साउए मस्ना व सुलास व रुबाऽ फ़इन् ख़िफ़्तुम् अल्ला तऽदेलू फ़वाहे.दतन्न" क़ुरान ४।१२

अर्थात्—हे मुस्लिम वृत्ति पुरुषो ! तुम उन स्त्रियों से विवाह करो जो तुम्हें स्वयं भी अच्छी लगें, उन्हें तुम दो दो, तीन तीन व चार चार पर्यन्त रख सकते हो, परन्तु यदि तुम्हें खटका हो कि तुम उन के आपस में न्याय पूर्वक व्यवहार न कर सकोगे तो एक ही से विवाह करो।

यहां "एक ही से विवाह करो" यह शब्द ही सिद्ध कर रहे हैं कि दो दो, तीन तीन, चार चार को सर्व साधारण एक ही सङ्ग नहीं रख सकते। यह आज्ञा केवल विशेष शक्ति सम्पन्न मुख्य पुरुषों ही से अधिक सम्बन्ध रखती है, क्यों कि इस्लाम में विवाह का उद्देश सदाचार युक्त शुभ सन्तानोत्पत्ति ही है। इसी लिये पहले पुरुषों को यह आज्ञा दी कि तुम इच्छानुसार शुभ गुण सम्पन्न स्त्रियों की खोज करो पुनः अपनी २ निज शक्त्यानुसार उनमें से दो दो, तीन तीन, व चार चार पर्यन्त से शुभ गुण युक्त सन्तनोत्पत्ति की विधिवत् चेष्टा करो।

सन्देह निवारण—इस स्थल पर "मातावा लकुम्मि नन्नेसाउए" से किसी अज्ञ पुरुष को यह सन्देह हो सकता है कि "इच्छानुसार मनोरमा स्त्रियों की खोज करने वाले पुरुष शुभ गुण सम्पन्न सन्तानोत्पत्ति से प्रायः वञ्चित रहते हैं इस भाव से यह आज्ञा कामेच्छा पूर्त्ति ही की पोषक हो सकती है, न कि सदाचार युक्त सन्तानोत्पत्ति की"। यहाँ पर इच्छानुसार इस भद्रा की खोज का यह भाव कदापि नहीं कि वह काम दृष्टि से देखने में सुन्दर हो, इस्लाम के निकट इसका विशुद्ध धर्मानुसार होना ही अभिप्रेत है देखो क़ुरान २।११।

इस में स्पष्ट शब्दों में यह बात बता दी गई है कि मुस्लिम अमुस्लिमा से विवाह न करे "वला तन्केहु.ल् मुश्रे् काते"।

अर्थात्—तुम ईशातिरिक्त के पूजने वालियों से विवाह मत करो।

पुनः इसी के सङ्ग इस बात का भी निषेध कर दिया गया है कि यदि इस प्रकार की अमुस्लिम स्त्रियां तुम्हें अच्छी भी लगें तो भी तुम उनसे विवाह मत करो, इस विश्वास की दृष्टि से तुम्हारी बान्धियाँ ही उनसे कहीं अच्छी हैं "वल अम तुम्मुऽमेन तुन्नखैरुम्मि म्मुशे्क तिँव्व लौ अऽ्ज़बत्कुम्"

अर्थात्—यद्यपि देखने में वही तुम्हें चमत्कार युक्त प्रतीत हों, परन्तु ईमान की दृष्टि से तुम्हारी बान्धियाँ ही उनसे कहीं उत्तम हैं।

इसी प्रकार श्री क़ुरान ने विश्वास युक्ता स्त्रियों को भी अमुस्लिम पुरुषों से विवाह न करने का वैसा ही आदेश किया है, देखो "वलातुन्केहु ल् मुशे्कीन" से "अऽ्ज़बकुम्" पर्यन्त।

इससे सिद्ध हुआ कि "मातॢब लकुम्" में वह भाव कदापि नहीं जो अनभिज्ञ लोग अपनी अज्ञानता से वर्णन करते हैं।

विशेष अनुमोदन—उपस्थित प्रमाणों से ऊपर युक्त "इच्छानुसार शुभ गुणा" की खोज का मूल भाव, स्पष्ट हुआ, अब उसी भाव का विशेष अनुमोदन आप निम्न स्थलों में और देखें, ताकि यह बात आप को अच्छी तरह समझ में आजावे कि इस्लाम, मुस्लिम के सदाचार की कहां तक रक्षा चाहता है। क़ुरान ४।१४ से ५।१ में कुछ ऐसी स्त्रियों का वर्णन आया है कि जिनसे धर्मानुसार पुरुषों को विवाह करने तथा न करने का आदेश पाया जाता है। उनमें से कुछ शब्दों को हम ऊपर कथित विषय के अनुमोदन रूप यहां उपस्थित करते हैं।

जहां विवाह में निषिद्ध स्त्रियों के बहुत से नाम आये हैं वहाँ "मुह् से्नात, मुसाफ़ेहात, तथा मुत्तख़ेज़ाते अख़्दानिन्न" से बचने का विशेष रूप से उपदेश किया गया है। "मुह् से्नात" से अभिप्राय पतिव्रता "मुसाफ़ेहात" से व्यभिचार युक्ता, तथा "मुत्तख़ेज़ाते अख़्दानिन्न" से गुप्त रूप से पुरुषों को पकड़ उनसे अनाचार युक्त व्यवहार करने वाली स्त्रियाँ समझो।

इन ऊपर युक्त स्थलों में वर्णित स्त्रियों से यत्नतः बचने के लिये श्री क़ुरान ने प्रत्येक मुस्लिम को निषेध पूर्वक उपदेश किया है।

अब जिस में न्याय की थोड़ी सी भी मात्रा होगी वह अवश्य ही क़ुरानी मुस्लिम की इस मौलिक पवित्रता को अच्छी तरह अनुभव कर सकेगा और जिनमें अभी भी सन्तोष मात्रा की उपज नहीं हुई वे कृपया निम्न समर्थन को और देखें।

समर्थन—उक्त उदाहरणों से इतना आप अवश्य ही जान चुके हैं कि सच्चा मुस्लिम कामी नहीं, वह धर्मानुसार चलने से ही समस्त शुभ चरित्रों की आदर्श खानि है, उसके सब कृत्य धर्मानुसार उसके शरीर तथा आत्मा दोनों के लिये समान रक्षक हैं। वह जो कुछ भी करता है प्रभु वचनानुसार ही करता है, उसके विरुद्ध अन्य पंथियों के सदृश उसका साहस ही नहीं

होता, इस लिये मुस्लिम व्यक्ति के प्रति इस प्रकार की कुसंस्कार युक्त निर्मूल संसारी भावनाओं का आरोप कर उसे चरित्र हीन देखने वा उसके ऐसा करने की कुचेष्टा करना यही आक्षेप कर्त्ता का एक भारी पाप है, जिसका ऊपर युक्त प्रमाणों से भली भान्ति खण्डन हो गया, अतः आशा है आगे को आप इस हानिकर दोष से बचने के लिये स्वयं भी उचित चेष्टा करेंगे।

अब आप उसी प्रकरण को यहां उपस्थित स्थलों से मिलाकर स्वाध्याय करें। पहले स्थल में जहाँ दो दो, तीन तीन, चार चार, स्त्रियों का वर्णन कर पुनः न्याय न हो सकने के भय से केवल एक ही स्त्री से विवाह की आज्ञा दी थी, अब उसी स्थल के शेष भाग "औ मा मलकत् ऐमानोकुम् ज़ालेक अद्‌ना अल्ला तऊलू" ४।१२ को इस "वमल्लम् यस्तते़ऽ मिन्कुम् तौलन्न अँय्यन्केहल् मुह्सनातिल् मुऽमेनाते फ़मिम्मा मलकत् ऐमानो कुम्मिन् फ़तयाते कुमुल् मुऽमेनाते" ५।१ के साथ मिला कर उनके यथार्थ भाव का पूर्ण बोध करें।

पहले वाक्य का अर्थ—(यदि तुम अनेक भार्य में न्याय नहीं कर सकते तो फिर तुम एक ही स्त्री रखो) "अथवा जो दासी तुम्हारे अपने अधिकार में हो उसी पर सन्तोष करो, हेतु तुम्हारा ऐसा करना तुम्हारे अन्याय युक्त व्यवहार से कहीं उत्तम तम है।"

दूसरे स्थल का शब्दार्थ—("और जो कोई तुम में से मुस्लिम स्त्रियों में से विवाह की शक्ति न रखता हो तो उसे अपनी मुस्लिम दासियों पर ही सन्तोष करना चाहिये जिन्हें तुम ने धर्म युद्धों में प्राप्त कर मुस्लिम बनाया है"।

इन दोनों स्थलों से सिद्ध हुआ कि मुस्लिम विवाह मुस्लिम की निज शक्त्यानुसार ही होना चाहिये, यदि कोई साधन सम्पन्न है तो वह एक से चार पर्यन्त मुस्लिम स्त्रियों से विवाह कर सकता है, पर यदि साधन सम्पन्न होते हुए भी उनमें न्याय पूर्वक व्यवहार संचार का भय हो तो एक ही स्त्री रखे, पुनः यदि ऐसी एक को भी न रख सके तो फिर धर्म युद्धों में प्राप्त अपनी दासी पर ही सन्तोष करे।

फिर यदि उसकी अपनी दासी न हो तो किसी दूसरी मुस्लिम दासी से विवाह करे, क्योंकि इस्लामी सिद्धान्तानुसार यह स्वतन्त्र मुस्लिम तथा मुस्लिमा दासी विश्वास=ईमान में दोनों बराबर हैं जैसा कि श्री क़ुरान ५।१ में कहा गया है "वल्लाहो अऽलमो बे ईमानेकुम् बऽज़ो कुम्मिन् बऽज़िन्न" अर्थात्—ईश्वर तुम्हारे विश्वासों को जानता है और तुम (स्वतन्त्र हो वा प्रतन्त्र) सब एक ही मानव जाति के अङ्ग प्रति अङ्ग हो, इसे भी प्रभु ख़ूब ही जानते हैं।

इस के उपरान्त जिस दासी से वह विवाह करना चाहता है पहले उसके पूर्व स्वामी की आज्ञा प्राप्त करे, पुनः "महर" अदा कर उस से विधिवत विवाह करे। देखो क़ुरान ५।१

"फ़न्केहू हुन्न बे इज़्ने अह्लेहिन्न व आतू हुन्न उजूर हुन्न बिल् मऽरूफ़े" अर्थात्—उन दासियों के स्वामियों की आज्ञा प्राप्त कर उन से विवाह कर लो तथा नियमानुसार उनका नियत "महर" उन्हें दे दो।

विचार शीलो ! अब श्री क़ुरान के इन अनेक प्रमाणों की उपस्थिति में इस्लामी विवाह पर किसी भी प्रकार का कोई सन्देह उठाना हमारी दृष्टि में यह एक प्रकार से उसके अपूर्व उपकारों पर भारी आघात के समान होगा। जो सहल स्वभाव सत्य प्रिय पुरुषों के निकट कभी भी सराहनीय नहीं; इस लिये अब आप इस विषय से मनन पूर्वक उचित लाभ लें।

रहा बहु विवाह सम्बन्ध मुख्य विषय, सो उसे किसी अन्य स्थल पर विस्तार पूर्वक निवेदन करूंगा।

ख—पहले समय की तलाक़—अब इस्लाम का वह दूसरा महत् उपकार कि जिस पर प्रायः विधर्मियों को अधिक सन्देह उठते रहते हैं, यह तलाक़=स्त्री त्याग का धर्मानुसार "मुख्य विषय" है। इस के समझने के लिये भी आप को इस के जानने की आवश्यकता है कि इस्लाम के पहले इसकी क्या स्थिति थी? जब तक इसे आप न जान लें तब तक विवाह के सदृश इस का समझना भी सरल नहीं, अतएव इस्लाम पूर्वक इस तलाक़ की अपनी स्थिति क्या थी? इसे भी अब आप कुछ उपयोगी शब्दों में यहां ध्यान पूर्वक अवलोकन करें।

१—उपस्थित प्रसिद्ध इस्लाम धर्म के पहले यह प्रथा स्त्रियों के लिये बड़ी ही कष्ट दायका थी, पुरुष जब चाहता था स्त्री को तलाक़ दे सकता था परन्तु इस्लाम ने बल पूर्वक इसका सकारण निषेध किया, तथा आगे को ऐसा अन्याय न हो, इसकी उत्तम व्यवस्था की।

२—पहले पुरुष स्त्री को तलाक़ देकर नाना कष्ट देते थे, यथा—तलाक़ के बाद जब यह देखा कि, तलाक़ दी गई स्त्री की इद्दत (=तलाक़ के बाद का वह समय कि जिस के बीतने पर वह दूसरा पति कर सकती है) पूरी होने वाली है तब उससे पुनः सम्बन्ध जोड़ लेते थे; (इस प्रकार से जोड़ने को धर्म की परिभाषा में "रज्अ़त" कहते हैं अर्थात् तलाक़ दी हुई स्त्री से उसका नियत समय पूरा न होने के भीतर ही उसके पूर्व पति का उस से सम्बन्ध कर लेना रज्अ़त कही जाती है) इस प्रकार वे बार २ स्त्रियों को कष्ट दिया करते थे। इस्लाम ने इस प्रथा को भी उठा दिया और इसमें यह सुविधा निकाल दी कि जिस किसी को ऐसा करना स्वीकार हो वह बार २ ऐसा न करे, क्यों कि इस से स्त्री की "इद्दत" लम्बी हो जाती है जिस से वह शीघ्र इच्छानुसार दूसरा विवाह नहीं कर सकती।

३—फिर कुछ लोग ऐसा भी करते थे कि इच्छानुसार जब चाहते अपनी स्त्रियों को तलाक़ दे देते। पुनः समय पूरा होने पर उन्हें बलात्कार रोक रखने के लिये यह कह देते कि हम ने तो हंसी की है। इस प्रकार की अनर्गल बातें वे प्रायः विवाहों तथा दासों के आज़ाद (विमुक्त) करने में भी कह दिया करते थे।

इन सब को इस्लाम ने दोष पूर्ण होने से एक दम रोक दिया तथा इनके स्थान में वे विहित सार गर्भित नियम प्रचारित किये कि जिन से स्त्रियों सहित दासों का पूर्ण उपकार हुआ।

४—प्राचीन अरबों में जैसे पुरुषों को स्त्रियों को तलाक़ देने का अधिकार था वैसे ही कहीं २ स्त्रियां भी पुरुषों को तलाक़ दे सकती थीं।

यथा—जब कभी कोई स्त्री अपने पुरुष से बहुत दुःख पाती तब वह भी उसे इस प्रकार तलाक़ देती थी कि—अपने रहने के ख़ेमः, रावटी वा छोलदारी का द्वार बदल देती थी, अर्थात्—पूर्व मुख होने से पश्चिम मुख उत्तर मुख होने से दक्षिण मुख इसी प्रकार पश्चिम दक्षिण मुख को पलट देती थी, इस द्वार के मुख परिवर्त्तन से उसका पति समझ जाता था कि आज मेरी स्त्री ने मुझे तलाक़ दे दी है, इसके पश्चात् वह उसके उस वासा में प्रवेश नहीं करता था, उस समय यही स्त्री की ओर से उसके पुरुष को तलाक़ देना समझा जाता था।

इसको भी हानिकर होने से इस्लाम ने स्वीकार नहीं किया। इसके बदला में इस्लाम ने स्त्री को यह अधिकार अवश्य दिया कि वह विवाह के समय अपने पति से यह प्रण ले लेवे कि वह उसकी उपस्थिति में दूसरा विवाह न करे यदि करेगा तो वह उस से पृथक हो जावेगी।

इस के अतिरिक्त पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को और भी अनेक सुविधायें दी गई हैं। यथा—बाल बच्चों सहित उनकी रक्षा, इस्लाम में इसका भार जैसा पुरुषों पर है वैसा स्त्रियों पर नहीं। फिर "महर" का देना, खाने पीने की कमी होने पर न्यायाधीश उसकी सुन सकता है, पुरुष की शारीरिक अवस्था ख़राब होने से वह स्वतन्त्र हो सकती है, इत्यादि अनेक सुविधायें दी गई हैं, जिनका पूर्व काल में कोई सद उपयोग सम्भव ही नहीं था।

५—फिर यह भी एक प्रकार की तलाक़ ही समझी जाती है कि स्त्री अपने पति को कुछ धन देकर स्वतन्त्र हो जावे। धार्मिक परिभाषा में इसी को "ख़ल्ऽ" वा "ख़ुल्ऽ" कहते हैं, अर्थात्—पति का अपनी स्त्री को कुछ धन लेकर छोड़ देना (तलाक़ देदेना) अथवा स्त्री का अपने पति को "महर" व कुछ अन्य धन देकर उस से तलाक़ प्राप्त करना। विशुद्ध तलाक़ व इस तलाक़ में इतना ही भेद है कि विशुद्ध तलाक़ पुरुष की ओर से विना बदला स्वयं स्त्री को दी जाती है तथा यह दूसरी तलाक़ स्त्री की ओर से धन देकर माँगी जाती है। प्राप्ति साधन तथा शब्द भेदों को छोड़ उद्देश में दोनों समान हैं। इत्यादि

६—**इस्लामी तलाक़ की विशेषता**—इस्लाम इस तलाक़ को अवश्य ही स्वीकार करता है इसमें किञ्चित सन्देह नहीं परन्तु इस्लामी तलाक़ तथा संसार की अन्य प्रचलित तलाक़ों में कितना भेद है? यह आप अब यहां ध्यान पूर्वक अवलोकन करें।

क—धार्मिक दृष्टि से हिन्दू, यहूदी आदि सभी लोग तलाक़ के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। फिर कोई २ इसे समयोपयोगी वा कोई आपद धर्म भी कहते हैं। परन्तु धार्मिक दृष्टि से

इसका नकार करने वाली मुख्य जातियों में केवल अंग्रेज़ लोग ही सब के अग्रसर थे। वे अपने धर्म की रू से इसे बराबर निषिद्ध कहा व माना करते थे। ऐतिहासिक दृष्टि से भी तलाक़ के सम्बन्ध में प्रायः इन्हीं लोगों को अधिक सन्देह हुआ करते थे। अतः मुख्य रूप से इस विषय पर इन्हीं लोगों ने अधिक तर लेख बद्ध विचार किया है। इनके इस प्रकार पुनः २ विचार का इन पर विशेष प्रभाव यह हुआ कि अन्त के ये स्वयं भी तलाक़ के पक्ष में आगये। इस से आप साधारण रीति से इस्लामी तलाक़ की बहु मूल्य उपयोग्यता का एक सन्तोष प्रद अनुमान कर सकते हैं।

ख—हेतु उपस्थित संसार में ज्ञान पूर्वक मनुष्य को मानव जाति की उचित रक्षा के लिये जिन जिन साधनों की अत्यन्त आवश्यकता है वे प्रायः सब ही इनके पास पूर्ण रीति से उपस्थित हैं। अतः इनका अपने निज अनुभव से तलाक़ के पक्ष में होना यह तलाक़ पक्ष की वास्तविक आवश्यकता को अवश्य मेव सिद्ध करता है।

परन्तु तलाक़ का जैसा उपयोग होना चाहिये था वैसा इन्हों ने नहीं किया, इससे तलाक़ जैसा उपयोगी नियम और भी अधिक घृणा का पात्र समझा जाने लगा। आगे चलकर सर्व साधारण में यही धीरे धीरे अमान्यता का मुख्य कारण हुआ।

यदि इनकी इस स्वतन्त्र प्रचार प्रणाली को भी लोग वैसा ही समझ जैसा कि इन से पूर्व अरब प्रदेशी जातियों में उन की अपनी २ भिन्न २ प्रणालियां समझी जाती थीं तो आज इसके कहने का किसी को कोई साहस न होता कि मूल तलाक़ अथवा इस्लामी तलाक़ में भी कोई कमी है।

हमारी दृष्टि में इसके अपयश का मुख्य कारण पहले तो लोगों की तलाक़ से अनभिज्ञता, दूसरे व्यवहारिक दृष्टि से तलाक़ की दुरोपयोग्यता ही है। इस प्रकार आज ये दोनों मिलकर इसकी उप युक्तता पर पूरा आवर्ण डाले हुए हैं।

ग—अब यहाँ अंग्रेज़ी तलाक़ों का कुछ थोड़ा सा नमूना देखें, जिन्हों ने मौलिक तलाक़ पर अपना उलटा प्रभाव डालकर साधारण जनता को उससे विमुखता सहित आक्षेपों का पाठ पढ़ाया।

उपस्थित काल के अनेक अंग्रेज़ी पत्रकार लिखते हैं कि अब यहां तलाक़ का निषेध नहीं रहा, अपितु तलाक़ों की समीक्षा होती है कि अमुक स्त्री ने अधिक तलाक़ें लीं वा अमुक ने। आज उसने एक शादी कर छोड़ दी, अमुक पुरुष ने आज इतनी शादियाँ कीं, इतनी को तलाक़ दी, इतनी शेष हैं। अमुक स्त्री ने एक घण्टा आधे दिन वा पूरे दिन एवङ अहोरात्र में इतने विवाह किये वा इतनी तलाक़ें लीं अथवा दीं इत्यादि। एक २ दिन में कितनी २ शादियाँ हो सकती हैं इनकी यथार्थ गणना की आज कोई सीमा नहीं।

पुनः इन तलाक़ों के कारण भी देखने योग्य ही हैं। किसी स्त्री को उसका पुरुष इस लिये तलाक़ देता है कि वह अपने सिर पर पूरे बाल रखती है। दूसरा इस लिये तलाक़ दे रहा है कि वह सारे सिर पर बाल नहीं रखती। इधर एक स्त्री अपने पति को इस लिये छोड़ रही है कि वह दाढ़ी नहीं रखता, दूसरी इस लिये छोड़ती है कि वह दाढ़ी रखता है। फिर कुछ पति इस लिये भी छोड़े जाते हैं कि वे घर ही में रह कर पत्र, पत्रिका, तथा पुस्तकें पढ़ा करते हैं। इसी प्रकार बहुत सी स्त्रियां इस लिये छोड़ दी जाती हैं कि वे बहुत बोलती हैं अथवा टेलीफ़ोन पर बहुत बातें करती हैं। अभी २ एक पत्रिका में देखा गया है कि एक इसी टाइप की युवती अपने पति से रुष्ट हो न्यायाधीश के पास इस लिये पहुँची कि उसके पति ने उसे गर्भवती कर कुरूपा बना दिया। इत्यादि इन हास्य प्रद बातों को सम्मुख रख कर ही बहुधा लोग उपस्थित तलाक़ को असार समझते हैं।

मूल तलाक़ ऐसी नहीं, इसका तात्विक ज्ञान जैसा मुस्लिम को है वैसा दूसरों को नहीं, इसी हेतु मुस्लिम इसे सदा इस्लामी सिद्धान्तानुसार समझने की पूरी चेष्टा करता है।

७—**इस्लाम और तलाक़**—अब चूंकि आप को इस्लाम से पूर्व तथा पर तलाक़ों का क्वचित प्रसिद्ध परिचय हो चुका है इस लिये सम्प्रति मूल इस्लाम की गार्हस्थ्य उपयोगी तलाक़ को अब आप यहाँ मनन करें।

जिन लोगों को गृहस्थ आश्रम का सुख पूर्वक अनुभव लाभ हो चुका है अब वे यह बात सोचें कि दम्पति का मुख्य लाभ किस में है? आया उन्हें ऐसे कड़े नियम में जकड़ देना उचित है कि जिस से वे दासों की नाईं खट पट होने पर भी आजीवन एक दूसरे के बन्धनों में जकड़े रहें, अथवा उन के लिये ऐसा नियम होना ठीक है कि जिस के अनुसार वे जीवन के मुख्य साधन स्वतन्त्रता सहित अपने अन्य सुख भोगों को भी भोगते रहें। फिर आपस के मेल, प्रेम को भी बनाये रखें, तथा बाल बच्चों की सेवा शुश्रूषा में भी कोई बाधा न पड़े, एवङ धार्मिक, तथा लौकिक व्यवहारों में भी किसी के आक्षेप पात्र न बनें, अपितु अपने दोनों ओर के बन्धु बान्धवों में सम्मान पूर्वक भावी स्त्री पुरुषों के सदा आदर्श युक्त अनुकरणीय, चरित्र वान् पति पत्नी समझे जावें।

मैं समझता हूँ प्रत्येक विचार शील गृहस्थी मेरे इस अन्तिम विचार को ही उनके लिये अधिक उपयोगी समझेगा, कारण इस में दोनों ही की मर्यादा पूर्वक स्वतन्त्रता की पूरी रक्षा हो सकती है। एवङ ऐसी विहित स्वतन्त्रता की उपस्थिति में पुनः कोई किसी पर किसी प्रकार का कोई अत्याचार भी नहीं कर सकेगा जैसा कि बहुधा इस से पूर्व अज्ञानता के समय में बाहुल्य रूप से हुआ करता था।

पुनः उपस्थित नाम की सभ्य जातियों के अमर्यादित हास्यप्रद स्वेच्छाचारों का भी इस पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। अतएव इस प्रकार की इस सुन्दर विधि को चलाकर आप अवश्य ही एक समय इस महान गृहस्थ आश्रम को सुख मय बना सकेंगे, ऐसी मुझे उस प्रभु से पूर्ण आशा है।

क—**इस्लामी तलाक़ का स्वरूप**—अब जब कि आप कमो बेश गृहस्थ आश्रम की कुछ मुख्य आवश्यकताओं सहित उसके मोटे २ साधनों को समझ चुके हैं, तब इस्लामी तलाक़ का स्वरूप क्या है ? उससे स्त्री पुरुष दोनों का समान लाभ है अथवा एक का लाभ दूसरे की हानि ? किम्वा स्त्री पुरुष दोनों की हानि है ? यह सब बातें अब आप यहाँ देखें।

१—पीछे आप क़ुरान के अनेक प्रमाणों से यह समझ चुके हैं कि स्त्री पुरुष दोनों एक प्रकृति, एक दूसरे के अङ्ग हैं। प्रभु के निकट शुभ कर्मों को छोड़ इन में कोई भेद नहीं, पुनः कर्मों में भी संसार के अन्य कार्यों के साथ २ यथा शक्ति ईश भक्ति विशेष है, जैसा कि श्री प्रभु ने क़ुरान २७।२ में स्वयं कहा है "हम ने जिन्नो इन्स को अपनी भक्ति के लिये उत्पन्न किया है"। फिर भक्ति उस समय तक सम्भव नहीं जब तक कि स्त्री पुरुष समूह रूप से अपने २ कर्त्तव्या-कर्त्तव्य को ज्ञान पूर्वक अच्छी तरह न समझ लें जैसा कि क़ुरान ८।१० में मनुष्य मात्र को सम्बोधन कर कहा गया है कि "हे आदिमोत्पन्न स्त्री पुरुषो ! हमने तुम्हारे नङ्गा पन को छिपाने के लिये जो कुछ भी तुम्हें प्रदान किया है उससे तुम अपने २ छिपाने योग्य गुप्त स्थानों को ढाँपो, वे तुम्हारी शोभा का कारण हों, परन्तु इसी पर सन्तोष न कर बैठना, यह तो तुम्हारे भौतिक नङ्गा पन का प्रत्यक्ष वस्त्र है, इस के उपरान्त तुम्हें अपने २ अभौतिक अन्तर आत्मा के लिये भी एक २ ऐसे सदाचार युक्त गुप्त (पवित्र) वस्त्र की आवश्यकता है जिससे तुम अपने २ प्रण भङ्ग के दोष से सदा बचते रहो, यह वस्त्र तुम्हारे पूर्व वस्त्र की अपेक्षा कहीं उत्तम है"।

इस उपदेश में स्त्री पुरुष को जिस पवित्र प्रण के स्थिर रखने का आदेश किया गया है वह अवश्य ही पहले स्त्री पुरुष का वह प्रण है कि जो उन्हों ने अपने विवाह समय में प्रभु को साक्षी रख उसके सम्मुख स्वयं स्वीकार किया था।

इस प्रकार इन विवाहिता स्त्री पुरुषों को जैसे अपने गुप्त वाह्य अङ्ग रक्षा की आवश्यकता है वैसे ही उन्हें अपनी अशुभ मानसिक कामनाओं के दमन की भी इससे कहीं अधिक आवश्यकता है, क्यों कि इसी दम्पति की योग्य सन्तानों पर समस्त संसार के उद्धार मात्र का सारा भार निर्भर है, यदि इनका यह योग्य प्रण इनकी अपनी पवित्र आत्माओं की इस पूर्ण योग्यता सहित पूरा न हो सके तो फिर इन नाम के स्त्री पुरुष तथा बन में चरने वाले पशुओं में कोई भेद नहीं। इस लिये विवाह सम्बन्ध में यथा शक्ति प्रण रक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है, ऐसा आप ऊपर युक्त प्रमाण से निश्चित समझें।

२—पुनः प्रभु की निज सत्ता सहित उसकी अनेक देनियों की अपेक्षा भक्त मात्र के पुरुषार्थ युक्त कर्माभिमान की निःसारता को दिखाने के लिये श्री क़ुरान २२।१७ में यह आज्ञा होती है कि "यदि हम भक्त मात्र के किये कर्मों (पुरुषार्थों) का उन्हें ठीक २ बदला दें तो भू भाग पर कोई प्राणी शेष न रहे"।

इस आयत का भाव विस्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि जो लोग भक्ति मात्र के लिये उत्पन्न हुए थे, उनमें कर्मों की वह पवित्रता नहीं आई जो उन्हें पुरुषार्थ रूपी कर्म से प्रभु के निकट पहुँचाने का कोई अच्छा साधन बन सके, इस लिये प्रत्येक स्त्री पुरुष को न्याय पूर्वक अपने २ छोटे मोटे दोषों को सम्मुख रखते हुए ही एक दूसरे से अभिमान रहित शुभ कामनाओं से युक्त ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि जिस से अन्योन्य का सम्मान बना रहे। ऐसी शुभ शिक्षा हम सब को ऊपर युक्त आयत से अवश्य ही ग्रहण करनी योग्य है।

३—इस के उपरान्त अब आप समूह रूप मनुष्य मात्र के प्रति निम्न उपदेश को और देखें।

"वऽबुदुल्लाह" से "फ़ख़ूरा" पर्यन्त। क़ुरान ५/३

अर्थात्—"हे मनुष्यो! तुम सब एक प्रभु ही की पूजा करो, उसकी सृष्टि में किसी को उसका साझी न बनाओ, माता पिता के सङ्ग उपकार करो, बन्धु बान्धव, अनाथ, दीनों (दरिद्रियों) सम्बन्धी पड़ोसियों, सम्बन्ध रहित अन्य पड़ोसियों, सदा संग बैठने वालों, अतिथि रूप यात्रियों तथा तुम्हारे आधीन (आज्ञा कारी) दास दासियों से सदा नम्र भाव युक्त शुभ व्यवहार करो, यदि ऐसा न करो तो यह जान रखना कि प्रभु निश्चय ही अभिमान युक्त दम्भियों को कभी प्यार नहीं करता"।

श्री क़ुरान की इस एक आयत के स्वाध्याय से आप जान सकते हैं कि श्री प्रभु समूह रूप मनुष्य मात्र से क्या चाहते हैं? तथा उन्हें उनके आपस के व्यवहारों को कैसा रखना चाहिये? एवं उन के ऐसा न करने से परिणाम रूप उनकी अन्तिम दशा क्या होगी? इसे भी उन्हों ने उचित शब्दों में प्रकट कर दिया है। इन सब उदाहरणों को सम्मुख रखते हुए यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि हम इस इस्लामी तलाक़ को ऊपर कथित तलाक़ों में से किन तलाक़ों में सम्मिलित करें, अथवा इस्लाम के मुख्यादेशानुसार यह तलाक़ ऊपर कथित तलाक़ों की परिभाषा में भी आ सकती है वा नहीं? यह क्यों कर कहें?

अब चेष्टा करने पर भी इस के स्पष्ट कहने का साहस नहीं होता, कारण जिस गम्भीर स्थिति को सम्मुख रखते हुए उसकी आज्ञा दी गई है। उस के मनन से यह अवश्य स्त्री पुरुष दोनों ही के लिये समान हितकर सिद्ध होती है।

४—अब जहां तक ऊपर युक्त स्त्री पुरुषों का उपदेशों से सम्बन्ध है उनसे स्त्री पुरुष कभी भी अलग हों, ऐसा कदापि ज्ञात नहीं होता। इसके विपरीत यही समझा जाता है कि उन्हें प्रभु आज्ञा पालन के साथ साथ सदाचार युक्त आचरण करते हुए भक्ति सहित मनुष्य मात्र की पूरी सेवा करनी चाहिये। पर जब वे इस के योग्य न रहें, प्रभु आज्ञाओं का उल्लङ्घन कर अनाचार फैलाना चाहें तो उन्हें उनकी अपनी भावी शिक्षा के लिये उस आदर्श दम्पति जीवन से रहित साधारण जीवन में ही प्रवेश करना उचित है। हमारी दृष्टि में उनके इस पतित जीवन के कुछ उपयोगी नियमों का ही नाम तलाक़ है और तलाक़ नाम भी मूलतः इस्लाम में प्रिय नहीं है।

क—क़ुरान १५।४ में स्त्री पुरुष दोनों को समान रूप से आज्ञा दी गई है कि वे व्यभिचार के निकट न जायें, हेतु व्यभिचार निश्चय ही निर्लज्जिता पूर्ण अत्यन्त ही बुरा चलन है, देखो "वला तक़्रबू" से "सबीला" पर्यन्त। इस से जाना जाता है कि स्त्री पुरुष दोनों को ही यत्न पूर्वक इस बुरे चलन से अवश्य ही दूर रहना चाहिये।

ख—फिर क़ुरान ४।५ में कहा गया है कि "जो लोग भूल चूक से ऐसे काम कर अपनी जानों पर अत्यार कर बैठते हैं यदि वे हठ रहित पश्चात्ताप के रूप से क्षमा माँगें तो प्रभु को छोड़ और कौन उन्हें क्षमा करेगा" देखो "व मन्" से "इल्लल्लाहो" पर्यन्त।

इसका भाव यह है कि पहले तो यह काम करना ही नहीं, पर भूल से यदि हो जावे तो केवल प्रभु ही क्षमा कर सकते हैं अन्य नहीं।

ग—ऊपर कथित दोनों स्थलों से यह जाना गया कि ऐसा चलन अच्छा नहीं, फिर यदि भूल से ऐसा हो जावे तो उसके लिये प्रभु से क्षमा माँगें। यहां तक तो उसका सम्बन्ध प्रभु से था।

अब ऐसी स्त्री के सम्बन्ध में उसका अपना पति उससे क्या व्यवहार करे ? यह आप क़ुरान ४।१४ की इस निम्न आयत में देखें।

"वल्लाती" से "सबीला" पर्यन्त।

इसका भाव यह है कि यदि कोई स्त्री व्यभिचार दोष युक्ता हो तो पहले उसके इस दोष पर चार साक्षी लाओ पुनः उस स्त्री को आजीवन घर में बन्द रखो, यह आज्ञा पहले थी, उस समय व्यभिचार युक्त स्त्री पुरुषों को कुछ भय दिलाकर सुधार की भी आज्ञा थी।

तीसरी आयत में अज्ञानता पूर्वक व्यभिचार की क्षमा का वर्णन है। चौथी में जान बूझ कर ऐसा करने हारों के लिये क्षमा नहीं, ऐसा खुला लेख उपस्थित है।

परन्तु इस्लाम में सब से अधिक ध्यान देने योग्य यह आयत है कि "तुम ऐसी स्त्रियों के संग भलाई से रहो, यदि तुम उन्हें मन से नहीं चाहते तो यह सम्भव है कि जिसे तुम्हारे

मन नहीं चाहते प्रभु उसी में तुम्हारे लिये कोई बहु मूल्य भलाई रख दें, देखो "वअ़ाशेरू" से "ख़ैरन्न कसीरा' पर्यन्त।

इस अन्तिम आयत में पुरुषों को ऐसी दोष युक्त स्त्रियों के संग भी भलाई से रहने का स्फुट उपदेश है, पुनः उन्हें ऐसी भलाई से रखने के उपलक्ष में बहु मूल्य भलाई की आशा दिलाना यह सिद्ध करता है कि प्रभु उनके इस प्रकार दोषी होने पर भी उन का वैसा व्योगा नहीं चाहते जैसा कि बहुधा सर्व साधारण अज्ञानी जनों के मनों में वह व्यर्थ चक्कर खा रहा है।

फिर मौलिक उक्तियों के प्रकाश से भी यही सिद्ध होता है कि प्रचलित तलाक़ की धड़ा धड़ी को प्रभु पसन्द नहीं करते।

इस्लाम के प्रसिद्ध प्रचारक श्री मुहम्मद महोदय भी इसकी पर्याप्त निन्दा करते हैं। अतः विज्ञ मुस्लिम जनता को भी यथा शक्ति इससे बचना ही चाहिये, ऐसा इसका स्फुट तात्पर्य है।

घ—अब उक्त साक्षियों सहित व्यभिचारियों की दण्ड धारा को आप यहाँ अवलोकन करें।

क़ुरान १५।४ में यह बात आप जान चुके हैं कि व्यभिचार बहुत ही बुरा चलन है। ४। १४ में इसके लिये चार विशुद्ध साक्षी चाहिये, एवङ १८।७ में यदि वे साक्षी न लायें तो उन्हीं साक्षी रहितों को अस्सी २ कोड़े दण्ड रूप से लगें, देखो "वल्लज़ीन" से "अबदा" पर्यन्त। और आगे को उनकी कोई साक्षी स्वीकार न हो, यह उन्हें भावी भय दिलाया गया है। और यदि वे जान बूझ कर इस प्रकार की लाञ्छना धरें, तब उन्हें डबल दण्ड होगा, देखो १८।८ "लहुम" से "वल् आख़ेरते" पर्यन्त। फिर यदि लाञ्छन लगाने वालों के पास कोई साक्षी न हो तो वे चार बार ईश्वर की सौगन्द खाकर अपने पक्ष का समर्थन करें और पाँचवीं बार कहने वाला यूँ कहे कि यदि मैं मिथ्या बोलता हूँ तो मुझ पर ईश्वर की फिटकार हो। इसी प्रकार मिथ्या साक्षी होने पर स्त्री उस के उत्तर में चार बार यह कह कर बच सकती है कि यह पुरुष मिथ्या बोलता है तथा पाँचवीं बार यूँ कहे कि यदि यह पुरुष सत्य कहता हो तो मुझ पर प्रभु का कोप हो, देखो "वल्लज़ीन यर्मून" से "ग़ज़बल्लाहे अ़लैहा" पर्यन्त।

इन साक्षियों के सम्मुख किसी स्त्री पर कोई लाञ्छना देना अथवा उसे व्यभिचारन सिद्ध कर उसके पति से उसे छुड़ाना; यह कितना कठिन तथा भयोत्पादक विषय है इसे पाठक स्वयं ही विचार करें।

पुनः यदि व्यभिचार सिद्ध हो जावे तो उसका विधानानुसार संसारी दण्ड इस प्रकार है।

व्यभिचारी स्त्री पुरुष को सौ २ कोड़े, दासी हो तो उसे ५० कोड़े लगें, देखो क़ुरान १८।७ व ५।१ सहित "अ़ज़्ज़ानियतो" से "जल्दतिन" तथा "फ़इज़ा" से "मिनल् अ़ज़ाबे" पर्यन्त।

इन दोनों स्थलों को इकत्रित कर स्वाध्याय करने से अविवाहिता व्यभिचारण को सौ कोड़े तथा दासी को ५० कोड़े दण्ड रूप से लगने चाहिये, और विवाहिता स्त्री पुरुष इस दोष के भागी होने से दोनों ही पथराव द्वारा मार दिये जावें। इसे आप वहु मूल्य उक्तियों की साक्षी में अन्तिम धारा समझें।

श्री क़ुरान की रू से ऐसे दोष युक्त स्त्री पुरुषों को पहले कड़ाई से समझाना, फिर उनसे पश्चात्ताप पूर्वक प्रायश्चित्त लेना, तथा इस अन्तिम अवस्था में अविवाहिता कन्या तथा दासी को छोड़ विवाहिता स्त्री पुरुष दोनों को मार देना, यह इस भयङ्कर पाप का अन्तिम परिणाम है। देखो इस विषय सम्बन्धी उक्तियों सहित क़ुरान ४।१४

फिर ऐसे महा पातकी स्त्री पुरुषों को दण्ड देने में कोई कमी न होनी चाहिये, इसके सम्बन्ध में आप क़ुरान १८।७ की आयत "वला" से "मुऽमेनीन" पर्यन्त को देखें। इस में विना दया उन्हें पूरे दण्ड की आज्ञा की गई है।

और हमारी दृष्टि में यह व्यभिचार का अपराध इतना भारी है कि इस का ठीक २ दण्ड दिये विना अपराधी सहित किसी विश्वासी को उसके पूर्ण विश्वास का निश्चय होता ही नहीं, जैसा कि "अज्जानी" से "अलल् मुऽमेनीन" पर्यन्त क़ुरान १८।७ में कहा गया है कि व्यभिचारी पुरुष, व्यभिचारण स्त्री या मुशरिका ही से विवाह चाहता है। इसी प्रकार व्यभिचारण स्त्री को व्यभिचारी पुरुष अथवा मुशरिक ही चाहता है। अर्थात्—जैसे व्यभिचारी व्यभिचारण स्त्री या ईशातिरिक्त पुजारन को ही पसन्द करता है इसी प्रकार व्यभिचारण स्त्री भी व्यभिचारी पुरुष अथवा ईशातिरिक्त के पुजारी को ही अधिक उपयोगी समझती है।

परन्तु इस्लाम प्रिय विश्वासियों के निकट ये सर्व सम्बन्ध निषिद्ध हैं। इसी लिये ऐसे आदर्श रहित पतित जीवन के अनाचारी स्त्री पुरुष संसार में अधिक उपद्रव का हेतु न हों, इस्लाम ने भी उन्हें पूर्व नियमानुसार पथराव ही की आज्ञा देदी। इस प्रकार इस्लामी तलाक़ सम्बन्धी साधारण विवरणों का यहाँ अवसान हो जाता है।

५—अब स्त्री पुरुषों के विहित मेल तथा उस मेल के परिणाम रूप श्री प्रभु भक्ति के कुछ मौलिक अंशों को आप यहाँ अवलोकन करें।

ऊपर कथित नम्बर (घ) के अन्तिम प्रमाण १८।७ के शेष शब्दों में आप यह पढ़ चुके हैं "परन्तु इस्लाम प्रिय विश्वासियों के निकट यह सर्व सम्बन्ध निषिद्ध हैं" अब विहित क्या हैं? यह आप २।१२ के आधार यहाँ देखें।

क—पहली बात यह कि स्त्री तुम्हारी खेती (क्षेत्र) है। विवाह के पश्चात् इस पर तुम्हारा वही अधिकार है जो सन्सारी खेती हारे को अपने निज खेत पर होता है। पुन: जैसे वह अपने

खेत सहित बीज की पूरी रक्षा कर संसार में एक अच्छा सम्मानित धनी बनता है इसी प्रकार तुम इस संसार में इस स्त्री द्वारा ऐसे धर्म धनी बनो कि जब तुम हमारी भेंट के लिये बुलाये जाओ तो उस समय हम भी तुम्हें तुम्हारे स्त्री पुत्रों सहित तुम्हें पूर्ण विश्वासी कह सकें, देखो "निसाउओ कुम्" से "मुऽमेनीन" पर्यन्त।

ख—फिर इस आदर्श सन्तानोत्पत्ति के लिये तुम भी अपने इन क्षेत्रों में वैसा ही समयानुसार बीजारोपण करो जैसा कि एक विज्ञ खेती हारा समयानुसार अपने भिन्न२ बीजारोपण से पूर्ण लाभ लेता है। इस हेतु पवित्रता रहित अपवित्र स्त्रियों के निकट तुम मत जाओ, यह आज्ञा हम तुम्हें तुम्हारे प्रचारक मुहम्मद द्वारा पठाते हैं, देखो "वयस्ऽलूनक" से "यत् हुर्न" पर्यन्त २।१२।

ग—फिर जब वे स्त्रियाँ उस साधारण भौतिक अपवित्रता से पवित्रता को लाभ कर चुकें तब उनके निकट वैसे ही जाओ जैसा कि प्रभु तुम से चाहते हैं, देखो "फ़इज़ा" से "अमर कुमुल्लाहो" पर्यन्त क़ुरान २।१२।

घ—अब प्रभु क्या चाहते हैं? यह आप यहाँ देखें।

"इन्नल्लाह युहि़ब्बु त्तव्वाबीन वयुहि़ब्बुल् मुततह्हेरीन" २।१२।

अर्थात्—निश्चय ही प्रभु अत्यन्त पश्चात्ताप करने वालों तथा अत्यन्त पवित्रता चाहने वालों को अतिशय प्रेम करते हैं।

मुस्लिम स्त्री पुरुषों के इस तात्विक मेल सम्बन्धी ऊपर कथित कतिपय उदाहरणों से यह आप अवश्य ही समझ गये होंगे कि क़ुरान का प्रभु इन से क्या कुछ चाहता है? और संसार की गतान्य जातियाँ क्या कुछ चाहती थीं? यह कुछ २ आप पहले भी जान चुके हैं। अब जिन में विशुद्ध ज्ञान मात्रा की थोड़ी सी भी चमक होगी वे इसे मुक्त कण्ठ स्वीकार करेंगे कि इस्लामी विधानानुसार मुस्लिम स्त्री पुरुष का यह आदर्श मेल केवल मनोकामना की पूर्त्ति का साधन नहीं, जैसा कि बहुधा इस्लामानभिज्ञ पुरुष प्रायः कहते व प्रचार करते फिरते हैं।

अब मैं इस मुख्य विषय की विशेषता को सम्मुख रखते हुए ही परिणाम रूप से इस (घ) नम्बर के उक्त दो नामों सहित कुछ अन्य नामों को और भी उपस्थित करता हूँ। ताकि उनके विधिवत अवलोकन से आप को ऊपर युक्त मेल का बोधगम्य अवबोधन हो सके।

६—इस्लामी प्रभु के चाहता अचाहता दलों का वर्णन—क— (१—१६) ऊपर युक्त प्रमाण में आपने "तव्वाबीन" तथा "मुततह्हेरीन" इन दो नामों को अर्थ सहित समझ लिया है। ११।२ में दूसरे नाम का पुनः अनुमोदन है कि प्रभु साफ़ सुथरा पवित्र रहने वालों को अधिक चाहते हैं। २।८ में उपकार (एह् सान) की आज्ञा देकर प्रकट करते हैं कि उपकारियों (मुह् सेनीन, को भी प्रभु चाहते हैं। फिर ४।५ में अच्छी अवस्था और दुरावस्था दोनों में प्रभु के

नाम पर व्यय करने वाले (युन्फ़ेकून), क्रोध को रोकने वाले (काज़ेमीनल्ग़ैज़), और सर्व साधारण मनुष्य मात्र के अपराधों को क्षमा करने वाले (आफ़ीन) इन समूह रूप तात्विक उपकारियों (मुह्सेनीन) को भी प्रभु चाहते हैं।

फिर ४।६, ६।७, तथा ७।२ देखें, इन स्थलों में भी (मुह्सेनीन) उपकारियों की चाह का उपयुक्त वर्णन आया है। इस के उपरान्त "मुत्तक़ीनों" के समूह अर्थात्—विशुद्ध मन: भय पूर्वक अपने किये प्रणों को उचित रूप से पूरा करने वालों को भी चाहते हैं, देखो क़ुरान ३।१६, १०।७ व १०।८।

इसी प्रकार के अन्य अनेक भद्र गणों में एक यूथ को "मुतवक्केलीन" अर्थात्—प्रत्येक शुभ कर्म को केवल प्रभु आश्रित उसके निज भरोसा ही पर करने वाले कहते हैं। इस समूह को भी प्रभु चाहते हैं। देखो क़ुरान ४।८

पुन: एक दल "मुक़्सेतीन" का है अर्थात्–प्रत्येक व्यवहार में प्रभु नियमानुसार विना पक्षपात विहित न्याय कारी। इस दल को भी प्रभु चाहते हैं, देखो क़ुरान ६।१० व २६।१३ तथा २८।८।

फिर उस दल को भी प्रभु प्यार करते हैं जो उसके उपदिष्ट धर्म की नियम रक्षा के लिये सीसा पिलाई दीवार की भान्ति एक अङ्ग हो उसके शत्रुओं से डट कर युद्ध करते हैं, इन्हें आप "मुजाहेदीन" समझें।

पुन: नबी, रसूल, औलिया अल्लाह, शुहदाउऽ, सादेक़ीन, इत्यादि नाना यूथ हैं जिनका क़ुरानादि इस्लामी साहित्य में प्रचुरता पूर्वक वर्णन आता है।

फिर शान्त मन: सन्तोषी गण (साबेरीन) को भी प्रभु चाहते हैं जो उसकी औचित्य पूर्ण आज्ञाओं का पालन करते हुए भी अपने कृत्य पापों की क्षमा, वाक्य कृत त्रुटियों के स्वीकार पूर्वक उनसे क्षमा तथा शत्रुओं के सम्मुख दृढ़ता पूर्वक स्थिर रहने की सर्वदा प्रार्थनायें करते रहते हैं। देखो क़ुरान ४।६ "वल्लाहो युहिब्बु स्साबेरीन" से "वन्सुर्ना अ़लल् क़ौमिल् काफ़ेरीन्" पर्यन्त।

पुन: इन्हीं महान सन्तोषी गण की असह परीक्षाओं को भी आप क़ुरान २।३ तथा २६।८ में देखें। "वल नब्लुवन्नकुम्" से "हुमुल् मह्तदून" तथा "वल नब्लुवन्नकुम्" से "अख़्बार कुम्" पर्यन्त।

अर्थात्—"प्रभु आज्ञा करते हैं कि हे हमारे प्रिय लोग हम तुम्हारी इस प्रेम परीक्षा को संसार का आदर्श बनाने के लिये तुम्हें क्वचित भय किञ्चित क्षुधा, धन की हानि, प्राण दान, तथा प्रिय सन्तान के पूर्ण व्योग से अलंकृत करेंगे, ऐ मुहम्मद ऐसी शुभ सूचना आप उन सन्तोषी जन को खोल कर सुना दो। फिर जो उस प्राप्त कष्ट पर यह कहेंगे कि प्रभु दी, प्रभु

के निकट चली गई, तो यह जान रखो कि ऐसे ही लोगों पर प्रभु की ओर से शंयु पूर्वक अनुकम्पा होगी, तथा यही लोग तात्विक सुपथी समझे जावेंगे।

दूसरा स्थल—"हे हमारे विश्वास का ढोल पीटने वालो! हम लोकोपकार हित उस समय तक तुम्हारी परीक्षा करेंगे जब तक कि तुम लेख बद्ध मुजाहेदीन तथा प्रसिद्ध "साबेरीन" की विख्यात कोटियों में न आ जाओ" इत्यादि।

पाठक! आप सोचिये, अन्ततः ये १६ दल भी तो उसी सुप्रसिद्ध जगत जननी ममता पूर्ण माता ही की शुभ सन्तान हैं कि जिसे ऊपर युक्त प्रमाणों में पुरुष का विशुद्ध "क्षेत्र" कहा है।

पुनः इनके अपूर्व गुण कर्मों का वर्णन कि जिनके स्मरण मात्र ही से भक्ति पूर्ण हृदयों में इस्लामी आस्तिकता की अद्भुत तरङ्गें अपने आप उठने लगती हैं। ये सब महा पुरुष श्री मुहम्मद महोदय द्वारा प्रचारित धर्म ही के कतिपय उज्ज्वल उदाहरण हैं जिन्हें वे स्वयं प्रेम करता है, ऐसा आप निश्चित ही समझें। पुनः इन्हों ने जो कुछ भी प्राप्त किया वे सब उस आदर्श पुरुष, प्रभु भक्ति के मुख्य सञ्चालक, श्री मुहम्मद महोदय ही के मार्गानुसरण से प्राप्त किया, देखो क़ुरान ३।१२ "क़ुल" से "ग़फ़ूरुर्रहीम" पर्यन्त।

अर्थात्—हे मुहम्मद! तुम संसार के प्रेम पक्षियों से घोषणा पूर्वक यह कह दो कि यदि तुम प्रभु प्यार का पक्ष रखते हो तो तुम मेरा (मुहम्मद का) अनुसरण करो, तुम्हारे ऐसा करने से प्रभु भी तुम्हें प्यार करेंगे, तथा तुम्हारे कृत पापों को भी क्षमा कर देंगे, कारण वह क्षमाकारी तथा दयालु हैं।

इस से ज्ञात हुआ कि ये सारे के सारे दल प्रभु भक्त श्री मुहम्मद महोदय सहित "मुऽमेनीन" नामक मुख्य श्रेणी के अविच्छिन्न अङ्ग हैं जिन्हें मुहम्मद महोदय का अनुकरण छोड़ अन्य कोई मार्ग स्वीकार नहीं, देखो नम्बर ५ के अन्तर्गत क़ुरान १८।७ सहित ३।१२। यही विहित नियमों के पूर्ण रक्षक तथा उनके विधिवत प्रचारक होने से उस प्रभु के अपूर्व प्रेम पात्र हैं। ऐसा अत्युक्ति रहित ही आप सुनिश्चित अवबोधन करें।

ख—(१—१६) अब जिस प्रकार आपने ऊपर कथित (क) नम्बर में प्रभु चाहता "मुऽमेनीन" नामक भक्त दलों का दिग्दर्शन किया है, वैसे ही सम्प्रति उसके एक दम विरोधी दलों का भी क्वचित बोध लाभ करें, इन दोनों के समन्वय पूर्वक स्वाध्याय से आपको प्रभु के चाहता अचाहता दोनों दलों में क्या भेद हैं? यह अच्छी तरह ज्ञात हो जावेगा।

पुनः ऊपर युक्त १८।७ के निम्न शब्द "परन्तु इस्लाम प्रिय विश्वासियों के निकट ये सर्व सम्बन्ध निषिद्ध हैं" यह भी आसानी से समझ में आजायेगा। कारण क़ुरान कार की

इस्लामी विभूतियों को ठीक २ समझने का यही अन्तिम उपाय है। जो लोग मूल इस्लाम को इस दृष्टि से स्वाध्याय नहीं करते, उन्हें इस्लाम, हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं दे सकता, हेतु इसका पहला अधिकार पवित्रता है जो अन्तः करण सहित शुद्ध, पवित्र नहीं उसे तो यह समझ ही में नहीं आता, पुनः जो अविधि पूर्वक हठ से श्रम करता है उसे इसके बहुधा उदाहरण प्रायः कुमार्ग ही की ओर ले जाते हैं, यथा क़ुरान २७।१६ व १।३ "ला यमस्सोहू इल्लल् मुतहहरून्" व "युज़िल्लो बेही कसीरँव यहदी बेही कसीरा"

अर्थात्—"क़ुरान ऐसे महत्व का ग्रन्थ है कि उसे पवित्रों के अतिरिक्त कोई छू हीं नहीं सकता" फिर "उस में वर्णित उदाहरण ऐसे हैं कि जिनसे बहुधा लोग अधिकारानुसार कुपथ तथा सुपथ दोनों ही को प्राप्त होते हैं"।

यहां सुपथियों से निश्चित ही ऊपर युक्त (क) नम्बर के १६ दलों के लोग तथा कुपथियों से उपस्थित (ख) नम्बर के मोटा मोटी निम्न १६ दलों के लोग समझने चाहिये, जिन का क्रमशः श्री क़ुरान में इस प्रकार योग्य विवरण आता है।

१—क़ुरान ३।६ में आता है "वल्ला हो ला युहिब्बो कुल्ल कफ्फारिन्न असीम"।

अर्थात्—प्रभु प्रत्येक कृतघ्न कारी पापी तथा उसकी निज सत्ता सहित आज्ञाओं के न मानने वाले काफ़िर को नहीं चाहता।

२—फिर ३।१४ में आता है कि "वल्लाहो ला युहिब्बुज़्ज़ालेमीन्" अर्थात्—वह अत्याचार युक्त अनाज्ञाकारियों को भी नहीं चाहता।

३—पुनः ३।१२ में "फिर निश्चय ही हठ पूर्वक न मानने वाले को भी नहीं चाहता "फ़इन्नल्लाह ला युहिब्बुल् काफ़ेरीन्"

४—५—(५।३) में कहा गया है कि "निश्चय ही प्रभु अभिमान पूर्वक अतराने वाले तथा सहसा मिथ्या बड़ाई मारने वाले किसी को भी नहीं चाहता "इन्नल्लाह ला युहिब्बो मन कान मुख़्तालन्न फ़ख़ूरा"

६—७—एवङ ५।१३ में कहा गया है कि निश्चय ही वह प्रभु दम्भ पूर्वक धोखा देने वाले पापियों को भी नहीं चाहता "इन्नल्लाह ला युहिब्बो मन कान ख़व्वानन्न असीमा"

८—पुनः १०।३ में "ख़ाइन" अर्थात्—प्रण पूर्वक रक्षा के निमित्त रखे धरोहरों में चोरी करने वाले किम्वा विश्वास पूर्वक प्रण दिये वचनों को चोरी से भङ्ग करने वालों को भी प्रभु नहीं चाहते।

"इन्नल्लाह ला युहिब्बुल् ख़ाइए नीन्"

९—फिर ६।१३ में है कि उसी प्रभु की शान्ति स्थापना के उपरान्त जो लोग शान्ति भङ्ग पूर्वक पुनः २ उपद्रव फैलाते हैं उन उपद्रव प्रिय लोगों को भी प्रभु नहीं चाहते, देखो "कुल्लमा३"

से "मुफ़्सेदीन्" पर्यन्त। तथा २०।११।

१०—फिर ७।२ में लिखा है कि प्रभु अपने नियमों की सीमा तोड़ने वालों को भी नहीं चाहते, अर्थात् अपनी भक्ति सहित मनुष्योचित मर्यादाओं का भङ्ग नहीं चाहते, देखो "इन्नल्लाह युहिब्बुल् मुऽतदीन्" यही बात आप ८।१४ में भी देख सकते हैं।

११—फिर ८।४ में लिखा है कि आप—अपव्ययकारी अथवा निरर्थक बहु व्यय कारियों को भी नहीं चाहते, देखो "इन्नहू ला युहिब्बुल् मुस्रेफ़ीन" तथा ८।१० में भी यही उपदेश आया है।

१२—पुन: १४।६ में कहा गया है कि वही प्रभु बड़ा पन की इच्छा करने वाले अहङ्कारियों को भी नहीं चाहते "इन्नहू ला युहिब्बुल् मुस्तक्बेरीन्"

१३—१४ ऊपर युक्त प्रमाणों में आप साधारण "ख़ाइन" तथा अति बड़े "कफ़्फ़ार" शब्दों का कुछ परिचय लाभ कर चुके हैं, उन्हीं से मिलते हुए ख़व्वान, तथा कफ़ूर को आप यहाँ देखें। ये दोनों शब्द यहां भारी कृतघ्नकारी तथा प्रधान तथ्य को न मानने वालों के प्रति उपयुक्त हुए हैं, देखो १७।१२ "इन्नल्लाह ला युहिब्बो कुल्ला ख़व्वानिन्न कफ़ूर" अर्थात्—निश्चय ही प्रभु प्रत्येक अतिशय कृतघ्नकारी तथा प्रधान सत्य को न मानने वालों को कभी प्यार नहीं करते।

१५—पुन: जैसे ऊपर ५।३ में आप "मुख़्तालन्न" तथा "फ़ख़ूरा" दो शब्दों को अतराने तथा बड़ाई मारने के अर्थों में देख चुके हैं वैसे ही यहाँ २०।११ में एक शब्द "फ़रिहीन" भी आया है, इस शब्द का मूल अर्थ तो "प्रसन्न होने वाले" ही होना चाहिये परन्तु यहाँ यह प्रसन्नता धर्म युक्त न होने से अतराने अर्थ ही में ग्रहण किया जाता है, इसी भाव से इस स्थल पर अभिमान पूर्वक प्रसन्न होने वालों को प्रभु प्यार नहीं करते, ऐसा स्वीकार किया है। इसका स्पष्ट तात्पर्य क्या है? इसे अच्छी तरह समझा देने के लिये हम इसकी कुछ अन्त की लैनें और भी यहां उद्धृत करते हैं।

देखो "इज़् क़ाल लहू" से "मुफ़्सेदीन्" पर्यन्त

अर्थात्—जब क़ारून नामक अत्यन्त धनी पुरुष को उसकी जाति के लोगों ने कहा कि अतरा मत, कारण ईश्वर निश्चय ही अतराने वालों को प्यार नहीं करता, तुम्हें जो कुछ भी प्रभु ने दे रखा है उस से पहले यथा शक्ति परलोक की चिन्ता कर, उसके उपरान्त अपने इष्ट मित्रों को भी विस्मरण न कर, जैसे प्रभु ने तेरे सङ्ग उपकार किया है, वैसे ही तू भी अन्यों के सङ्ग उपकार कर, तू इस प्रभु प्रदत्त देनी के द्वारा पृथ्वी के उपद्रव का हेतु मत हो, (यह तुम्हारे प्रति हमारी एक शुभ सम्मति है यदि इसे स्वीकार न करो तो फिर) निश्चय ही वह प्रभु उपद्रवियों को प्यार नहीं करता (ऐसा विश्वस्त रूप से समझ रखो) इत्यादि।

१६—फिर "मरहृन्न" तथा "मुख़्तालिन्न" सहित एक तीसरा "फ़ख़ूर" शब्द भी देखने योग्य है, जो २१/११ तथा २७/१६ में भारी घमण्ड के अर्थ में उपयुक्त हुआ है, देखो "इन्नल्लाह ला युहिब्बो कुल्ल मुख़्तालिन्न फ़ख़ूर" तथा "वल्लाहो ला युहिब्बो कुल्ल मुख़्तालिन्न फ़ख़ूर"।

अर्थात्—निश्चय ही प्रभु हेकड़ी पूर्वक अतराने वाले अति घमण्डी पुरुष को नहीं चाहता।

इन १६ के अतिरिक्त और भी अनेक दल हैं जो पूर्व दलों के गुप्त व प्रकट विरोधी तथा अपने २ कर्मानुसार ईश्वर के मुख्य कोप पात्र हैं।

यथा—फ़ासिक़ (दुष्टता पूर्वक प्रभु आज्ञाओं को न मानने वाला), फ़ाजिर (पाप पूर्वक प्रभु मर्यादाओं को तोड़ने हारा), मुनाफ़िक़ (गुप्त काफ़िर), मुल्हिद् (वक्र गति कुचाली), इत्यादि।

ग—अब इस समस्त सृष्टि के गत, उपस्थित तथा भावी स्त्री पुरुषों को आप निम्न मुख्य भागों में विभक्त समझें।

आदि सृष्टि से लेकर आज पर्यन्त जितनी भी प्रजायें उत्पन्न हुई हैं, चाहे उन्हें मनुष्य व इन्सान कहा गया हो अथवा वे देव जिन्न आदि विख्यात नामों ही से प्रसिद्ध क्यों न हुये हों, परन्तु प्रस्तुत क़ुरान में उन सबको प्रभु तथा शैतान दो ही के मानने वाले कहा गया है, देखो क़ुरान ६।१२ इस में प्रभु दल को "हिज़्बल्लाह" तथा क़ुरान २२।१३ के अनुसार दूसरे दल को "हिज़्बे शैतान" स्वीकार किया है। पूर्व दल के लोग अल्लाह, उसके रसूल तथा विश्वासी मात्र के मित्र हैं। ये आस्तिकता पूर्ण शुभ कामनाओं के इच्छुक तथा धार्मिक संसार के सदा आदर्श रहे हैं। दूसरे दल का मुखिया शैतान तथा उसके मानने वाले नास्तिक एवङ वे सब ही हर प्रकार से अल्लाह, उसके रसूलों तथा उनके मानने वाले समस्त विश्वासियों के कट्टर विरोधी कहे जाते हैं।

यह बात आप ऊपर युक्त दोनों स्थलों से अच्छी तरह जान सकते हैं। इसके विशेष विस्तृत विवरण को हम इसके आगामी दूसरे प्रकरण में उसके अपने उचित स्थल पर निवेदन करेंगे।

घ—उपस्थित समय में उन्हीं दो दलों में से मिश्रित नाना धर्म, जाति तथा स्वतन्त्र, प्रतन्त्र नाम के अनेक वाद चालु हो गये हैं। जिन में से कुछ देश कालानुसार व्यक्ति गत, कुछ देश जातियों की परम्परा के सम्बन्ध से, कुछ उनके संचालक लीडरों के निज नामों से युक्त, कुछ नामी के नाम भावानुसार गौण, रूढ़ि, तथा कुछ प्रेषितों के अपने नामों से भी सम्बन्धित देखे जाते हैं। परन्तु इस्लाम इन सबसे विलक्षण केवल अपने प्रेरक ही से सम्बन्ध रखने का आदेश करता है। यथा—"व इज़् अख़ज़ल्लाहो मीसाक़न्नबिय्यीन" से "फ़लँय्युक़्बल मिन्हो" पर्यन्त।

अर्थात्—"जब अल्लाह ने सर्वसाधारण आत्माओं के सम्मुख सब नबियों से यह प्रण लिया कि हम संसार में तुम्हारे पास अपनी बुद्धि पूर्वक पुस्तक में से जो कुछ भेजें उस पर तुम सब विश्वास लाना, पुन: एक प्रेषित के उपरान्त जब दूसरे को पठायें तब तुम पुस्तक सहित उसका भी अनुमोदन करना, तथा उसे हर प्रकार से योग्य सहायता प्रदान करना, प्रभु आज्ञा हुई, क्या तुम हमारे इस प्रण को स्वीकार करते हो ? उत्तर मिला "अवश्य स्वीकार है" प्रभु ने कहा अच्छा हम भी तुम्हारे इस प्रण के साक्षी होते हैं, इसके पश्चात् जो कोई इसे तोड़ेगा वही हमारी आज्ञा के बाहिर समझा जावेगा, सावधान, ऐ मुहम्मद ! क्या ये लोग उस प्रभु मार्ग के अतिरिक्त अब कोई अन्य मार्ग चाहते हैं ? हालाँकि भू भाग तथा आकाश मण्डल के सर्व सुबोधी उसी को अनुसरणीय मान उसी की ओर जाना चाहते हैं, हे मुहम्मद ! तुम उनसे खुले शब्दों में कह दो कि हम प्रभु पर विश्वास रखते हैं तथा उसी की उस प्रेरणा पर जो उसने हम पर तथा हम से पूर्व इब्राहीम, इस्माईल, इस्हाक़, यऽक़ूब, उसकी सन्तान, मूसा, ईसा तथा उनके अतिरिक्त अन्य नबियों पर कृपा की, उस सब को उन के परिपालक प्रभु की ओर से समझते हैं ।

पुन: उन नबियों में भेद बुद्धि न रखते हुए हम वे सभी उस एक ही के सम्मिलित उपासक हैं, अब जो कोई इस्लामातिरिक्त अन्य मार्ग की अभिलाषा करे उसे स्मरण रखना चाहिये कि प्रभु उसे कदापि स्वीकार नहीं करेंगे ।

इस प्रकार आदि से अन्त पर्यन्त सब नबियों का यह एक ही शाश्वत धर्म रहा है तथा रहेगा ।

इस प्रमुखय धर्म में स्त्रियों का कैसा उत्तम सत्कार पूर्वक व्यवहार रहा ? यह बात आप महात्मा श्री नूह, लूत, तथा महा तपस्वी श्री अय्यूब महाशयों की निज स्त्रियों में स्वयं देख सकते हैं, जिन्हों ने उन्हें असह कष्ट दिये परन्तु उन्हों ने उन्हें स्वयं नहीं त्यागा । इसी प्रकार सुभद्रा स्त्रियों में श्रीमति आसिय: का नाम स्मरणीय है जिसने अपने बध पर्यन्त इस्लाम धर्म की विख्यात मोमेन: होते हुए भी फ़िरऔन जैसे प्रसिद्ध नास्तिक के अकृत्य कर्मों सहित कटुतम् वचनों को सह कर भी प्रत्येक्ष में उस के निर्वाह का पूरा प्रयत्न किया । ये हमारी ओर से उस पूर्व दल के प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों के कतिपय उदाहरण हैं जिन्हें ऐतिहासिक दृष्टि से हम, आप प्राय: सभी स्वाध्याय शील अच्छी तरह जानते हैं । अत: उपस्थित इस्लाम के इस तलाक़ सम्बन्धी विषय पर विचार करने वाले विद्वानों को उक्त स्त्री पुरुषों के इन सहिष्णुता पूर्वक व्यवहारों को अवश्य मेव ध्यान में रखना चाहिये, नहीं तो उन की खोज अवश्य ही निष्फल तथा आदर्श हीन सिद्ध होगी ।

प्रचलित तलाक़ परिचय—ऊपर युक्त क़ुरान २/१२ में आप उच्च कोटि के आदर्श तथा निर्मल "मुऽमेनीन" (उपस्थित मुस्लिम संज्ञक विश्वासियों) के "क्षेत्र" सहित नाना विषयों को

यथा योग्य विचार कर चुके हैं, पुनः स्थलानुसार इन के योग्य व्यवहारों का भी यथा सम्भव थोड़ा बहुत परिचय हो ही चुका है।

इसके उपरान्त समूह रूप इनके तलाक़ सम्बन्धी कुछ विशेष नियमों को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

जान कार लोग इसे अच्छी तरह समझते हैं कि समूह में समयानुसार प्रायः हर प्रकार के लोग मिश्रित होते हैं। उन में सबल, निर्बल, वीर, योद्धा, भक्त तथा साधारण कोटि के भी अनेक स्त्री पुरुषों का समावेश होता है। इसी नियमानुसार आप सम्प्रति प्रस्तुत मुस्लिम समूह में भी अनुभव करें, और प्रमाण के लिये इसी बात को आप २/१२ के अन्तर्गत दैत्र विवरण के उपरान्त उसके पर भाग से २/१५ पर्यन्त पूरे चार रुकूऽ में इस तलाक़ विषय का योग्य अनुभव करें।

मैं आपकी विशेष ज्ञानकारी के लिये उस के कुछ अन्य स्थलों को भी यहां अङ्कित किये देता हूँ ताकि जब२ आप चाहें उन्हें स्वयं भी सम्मिलित कर बुद्धि पूर्वक विचार कर सकें, यथा—२२/३ २८/१७ तथा २८/१६ इनमें श्री मुहम्मद सहित उनके अनुयाई मात्र का तलाक़ से क्या सम्बन्ध है? तथा इन दोनों को उक्त त्यक्त स्त्रियों के संग कैसा २ उपयुक्त व्यवहार करना चाहिये? इसका बड़ा ही सुन्दर तथा हृदय ग्राह्य वर्णन किया गया है।

सब का सार—अब यदि इसी विषय को विस्तार सहित वर्णन किया जावे तब तो यही निबन्ध रूप एक पूरा स्वतन्त्र ग्रन्थ बन जावेगा, जिसके लिखने पढ़ने में हम आप दोनों का समय अधिक व्यय होगा अतः इसके समझाने में हम वह मार्ग स्वीकार करते हैं जिसमें आप इसको सरलता से समझ जायें और हमारे आपके समय की भी पूरी रक्षा हो सके।

क—तलाक़ के लिये यह आवश्कीय है कि जिस स्त्री को तलाक़ दी जावे वह पहले विधिवत तलाक़ देने वाले पुरुष से विहित नियमानुसार विवाह की हुई हो।

ख—पुनः उसका "महर" पहले विवाह के समय नियत कर उसे दे दिया जावे अथवा तलाक़ के समय ही उसे भी नियत कर उसे दे दिया जावे।

ग—फिर तलाक़ पाने वाली स्त्री की एक अवस्था ऐसी भी है कि उस से विहित नियमानुसार विवाह तो होगया परन्तु विवाहित पुरुष से उसका मेल नहीं हुआ और इधर तलाक़ का कोई कारण उपस्थित हो गया।

घ—परन्तु विवाहिता "महर" वाली ही हो यह सर्वांश नबी के लिये लागू नहीं, इसी प्रकार नबी रूदोषा स्त्री को भी अपने घर से बाहिर कर सकते हैं, परन्तु अन्य स्त्री पुरुष ऐसा नहीं कर सकते।

अर्थात्—यदि कोई स्त्री अपना व्यक्तित्व नबी को अर्पण कर विवाह करना चाहे और नबी भी उसके इस अर्पण में सहमत हों तो ऐसी अवस्था में उस स्त्री से नबी विना "महर" विवाह कर सकते हैं। ऐसे ही यदि किसी स्त्री से महा पाप का अनुभव करें तो उसे विना विलम्ब घर से निकाल सकते हैं। परन्तु अन्य सर्व साधारण मुस्लिम स्त्री पुरुष ऐसा नहीं कर सकते।

पुनः जहां नबी के लिये इन विशेषताओं का वर्णन आया है, वहीं कुछ आगे चलकर इसका निषेध भी उपलब्ध होता है कि अब तुझे प्राप्त स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियां "हलाल" नहीं, अर्थात्—धर्मानुसार वर्जित अथवा निषिद्ध हैं। शेष तलाक़ाधिकार में सब समान हैं।

महर सहित तलाक़ स्थिति—यूँ तो महर व तलाक़ की भिन्न २ स्थितियां अनेक हैं, परन्तु आपके जानने योग्य कुछ विशेष स्थितियों को हम यहाँ निम्न अङ्कों में उपस्थित करते हैं, ताकि उनसे आप को सम्प्रति उचित ज्ञान की पूर्ण उपलब्धि हो सके।

१—पहले महर का ठहराव हुआ, पुनः स्त्री पुरुष दोनों विवाह कर एक संग रहे, इसके उपरान्त यदि पुरुष ने स्त्री को तलाक़ दी तो उसे उक्त स्त्री को पूरा महर देना चाहिये, यह बात उपस्थित तलाक़ वादियों तथा प्राचीन अरबों में नहीं थी।

२—महर का ठहराव हुए विना विवाह हुआ, तथा स्त्री पुरुष दोनों एक संग भी रहे, इसके उपरान्त पुरुष ने स्त्री को तलाक़ देदी, तो ऐसी स्थिति में पुरुष को उचित है कि उस स्त्री की निज जातीय स्त्रियों के महरानुसार उसको उसका महर दे देवे। यह भी इस्लाम ही की विशेषता है।

३—महर का ठहराव होकर विवाह हुआ परन्तु संयोग नहीं हुआ, ऐसी अवस्था में तलाक़ देने वाले पुरुष को उक्त स्त्री को नियत महर का आधा भाग अवश्य ही देना चाहिये। स्त्री सम्बन्धी इस्लाम की यह मुख्य उदारता है।

४—महर का ठहराव नहीं हुआ, पुनः मेल भी नहीं हुआ ऐसी स्थिति में तलाक़ होने पर पुरुष को कुछ देना नहीं आता, परन्तु क़ुरान ऐसी अवस्था में भी पुरुष को उक्त स्त्री के उपकार की आज्ञा करता है, देखो २।१५ "वला तन्सवुल् फ़ज़्ल बैनकुम् इन्नल्लाह बिमा तऽमलून बसीर"--

हे पुरुषो! तुम आपस की बड़ाई को मत भूलो, प्रभु निश्चय ही तुम्हारे किये कामों को देखने तथा जानने वाला है। अर्थात्—यद्यपि इस स्त्री का तुम पर कोई हक्क़ नहीं तथापि तुम्हारे बड़ापन के महत्व की दृष्टि से तुम इसे अवश्य ही कुछ न कुछ उपकार रूप ही से देकर विदा करो। यह इस्लाम की न भूलने योग्य अपूर्वता है।

५—फिर ऊपर युक्त स्थल के पूर्व भाग में स्त्री पुरुष दोनों ही को अपना २ हक्क़ छोड़ने में पूरी स्वतन्त्रता दी गई है, परन्तु इस छोड़ने में भी स्त्री की अपेक्षा पुरुष ही का छोड़ना

अधिक न्याय युक्त भलाई का साधन वर्णित हुआ है, देखो "इल्लाइ अँय्यऽफ़ून" से "लित्तक़्वा" पर्यन्त।

फिर उसी रुकूअ़ में त्यक्त स्त्री को उसके नियत "मह्र" के अतिरिक्त भी कुछ दे देना चाहिये इसे उच्च कोटि के पुरुषों का निज कर्त्तव्य कहा है, देखो "वलिल् मुतल्लक़ाते मताउ़न्न बिल् मऽरूफ़े ह़क़्क़न अ़लल् मुत्तक़ीन" २।१५।

फिर २।१३ में है कि तलाक़ दिये पीछे या तो उसे पुनः विधिवत अपनी धर्म पत्नी बनाकर रखो, नहीं तो उसे उपकार पूर्वक विदा कर दो, और जो कुछ तुम उन्हें पूर्व दे चुके हो उन दी वस्तुओं में से अब कुछ मत लो। अर्थात् वे पूर्व का दिया भी उनके संग जाने दो।

फिर यदि तुम्हारी चेष्टा होने पर भी संग रहना असम्भव प्रतीत हो और प्रभु प्रदत्त मर्यादाओं के उल्लङ्घन का भी दोनों को समान भय हो तो ऐसी स्थिति में यदि स्त्री अपना ह़क़ छोड़ स्वतन्त्र होना चाहे तो इस में तुम दोनों पर कोई दोष नहीं, देखो "फ़इम्साक़िन्न" से "बेही" पर्यन्व।

इसी प्रकार और भी अनेक स्थल हैं जिन्हें आप २।१२, १३, १४, १५ व २२/३ व २८/१७ तथा २८।१६ में स्वयं देख सकते हैं।

ये साधारण कोटि के गृहस्थों के वे अन्तिम नियम हैं, कि जिन्हें इस्लाम ने दोष युक्त स्त्री पुरुषों के विशेष सुधार के निमित्त वर्णन किया है। आप इन्हीं नियमों को अपने शब्दों में निकृष्ट कोटि के गृहस्थों का आपद धर्म कह सकते हैं। प्रभु ने इन्हें कहीं "हु़दूदुल्लाह" कहीं "आयातुल्लाह" कहीं "यए़ज़ोकुम् बेही" व कहीं "यू अ़ज़ो बेही" के शुभ नियम, मर्यादा, प्रभु प्रदत्त गार्हस्थ्य चिन्ह व उपयोगी उपदेशों के नाम से प्रकट किया है।

पुनः इन्हीं विधानों को समूह रूप गृहस्थों की उत्तम पवित्रता पूर्वक स्वच्छता का साधन कहा है। और शेष यह कहकर स्पष्ट कर दिया है कि इन गृहस्थ उपयोगी नियमों को जैसा हम जानते हैं वैसा तुम नहीं जानते, देखो "ज़ाले कुम् अज़्क़ा लकुम्" से "ला तऽलमून" पर्यन्त क़ुरान २।१४।

अतः इनका अपने प्रति प्रभु अनुकम्पा समझ कर विचार पूर्वक मनन करो। यह "प्रभु प्रेषित पुस्तक का बुद्धि पूर्वक उपदेश" है, इस हेतु तुम इनका उपहास न कर इनसे योग्य लाभ लो, देखो क़ुरान २।१३ "वला तत्तख़ेज़ोऽ" से "यए़ ज़ो कुम् बेही" पर्यन्त।

मेरे विचार में अब यह विषय समय तथा स्थल की दृष्टि से एक प्रकार आपके समझने योग्य होगया है, इस लिये इसे यहीं समाप्त कर इसके उपरान्त इसके तीसरे अङ्ग दास दासियों के विषय को आरम्भ करता हूँ।

इस्लाम तथा दास दासी विवरण—पूर्व पेजों में आप यह जान चुके हैं कि उपस्थित प्रकरण को हमने तीन भागों में विभक्त किया है, जिनमें से कन्या तथा स्त्रियों सम्बन्धी दो भाग यहाँ तक समाप्त हुए। अब दास दासी नामक यह तीसरा भाग यहाँ से आरम्भ होता है। इस क्रम को अच्छी तरह समझने के लिये आप इसके ऊपर शीर्षकों में "इस्लामी उपकारों का बीज परिचय" नामी मुख्य शीर्षक देखें, जिस में इन तीनों का क्रमशः उल्लेख आया है। पुनः इस भाग को आप के विशेष सुविधा के लिये हम (क, ख) नामक दो भागों में विभक्त कर वर्णन करेंगे।

(क) भाग में दास तथा (ख) भाग में दासियों का उचित विविरण रहेगा।

क–१–दास प्रथा का परिचय-ऐतिहासिक दृष्टि से दास प्रथा मानव जाति में सब से पहिली कुप्रथा है, मानव जाति के प्रारम्भक जय, विजय का इस से घनिष्ट सम्बन्ध है, आरम्भ काल में इस नाम की कोई भिन्न जाति न थी, जैसा कि बहुधा उपस्थित काल की अभिमान युक्त जातियाँ कहती, समझती व मानती हैं। आज के समान पहिले भी यह हमारे सदृश ही संसार भोग के पूर्ण अधिकारी थे, हैं व रहेंगे, हमारे जैसी सारी शक्तियां इन में विद्यमान थीं, हैं तथा आगे को भी रहेंगी, इस में किञ्चित सन्देह नहीं।

दास प्रथा का आरम्भ जय शील समूहों से हुआ, यह निश्चित ही है। पूर्व काल में वे जिन्हें जीत लेते थे। उन्हें यथा शक्ति संसार के अच्छे सुख भोगों से वञ्चित कर अपनी इच्छानुसार चलाने के लिये उन्हें दास नाम की घृणित पदवियाँ दे देते थे।

यूँ यही उच्च कोटि के लोग छ समय के पश्चात् अवन्नत अवस्था को पहुँचकर दरिद्रता युक्त कष्ट भोगी शत्रु अथवा बड़े लोगों से भिन्न दीन, दुःखिया, विजाति लोग कहे व समझे जाते थे।

इन दीन दुःखिया स्त्री पुरुषों के कष्ट मय जीवनों को आप संसार की बड़ी २ सभ्य जातियों के प्राचीन काले इतिहासों में देखें। यथा—मिश्री, बाबुली, ईरानी, हिन्दुस्तानी, यूनानी, रोमी तथा प्राचीन अरब जात इतिहासों में।

इस घृणित दास नाम से उन्हों ने इनके संग क्या कुछ नहीं किया? इसका कुछ थोड़ा सा दिग्दर्शन हम आपको इस के पूर्व भी करा चुके हैं। पुनः इन्हें कैसे २ अमानुषिक कष्ट दिये जाते थे, ये किन २ घृणाओं के पात्र हुए, एवङ ये किस कष्टमय जीवन से उनके मध्य में रहन सहन तथा खान पान करते थे, इत्यादि। यदि इन नाना विषयों की रोमाञ्चकारी पूर्व स्मृतियों को आप जागरित कर जानना चाहें तो उपस्थित हिन्दुस्तान के अछूत तथा सभ्य स्वतन्त्र देशों में से अमेरिका के रक्त वर्ण समूहों के उदाहरण आप आज भी देख सकते हैं। यही प्राचीन दास प्रथा का साधारण परिचय है।

पुनः यही दासता धीरे २ धर्मों में प्रविष्ट हो उन्हें उनके धर्माधिकारों से भी वैसे ही वञ्चित करने लगी जैसा कि पहले उन्हें उनके उन्नत नीति क्षेत्रों से वञ्चित कर चुकी थी। यह बात इस्लामातिरिक्त प्रायः सभी धर्मों में उपस्थित थी और है।

इस प्रकार इन प्रभु भक्तों के ये उत्तम जीवन के दो मुख्य सुधार साधन छिन जाने के उपरान्त इन में धीरे २ धर्म, नीति के योग्य नेताओं का अभाव तथा अज्ञान सहित दुःख दरिद्रताओं का स्थिर राज्य स्थापित होगया।

इन सौभाग्य रहित प्रभावों से पीड़ित दास नाम धारी नर नारियों को जो २ कष्ट हो रहे थे उन्हें इस्लाम ने बल पूर्वक रोका, जो उनकी स्वतन्त्रता में बाधक हुए उन्हें युद्ध पूर्वक शिक्षा दी, इस विधि उस समय की प्रचलित दास प्रथा को इस्लाम ने एक दम रोक दिया। तथा यथा शक्ति कुछ पूर्व बनाये गये दासों को भी उनके निज स्वामियों से ख़रीद कर उन्हें आज़ाद (स्वतन्त्र) करा दिया गया, और आगे को इस दास प्रथा का वैसा प्रचार न हो, इस के लिये भी अवश्य ही कुछ विशेष समय लगा, परन्तु यह निश्चित ही है कि धर्म, नीति तथा ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्राचीन दास प्रथा का पहिला विरोधी केवल इस्लाम ही है।

क—(२)—अब इस्लाम ने इनकी इस स्वतन्त्रता को किस रूप से स्वीकार किया? इसे भी समझाये विना आप स्वयं नहीं समझ सकते, इस लिये उसे कुछ उचित शब्दों में निवेदन करता हूँ। आशा है, आप उसे मनन पूर्वक विचार करेंगे।

क—(३)—यह बात प्रसिद्ध है कि इस्लाम धर्म मनुष्य मात्र की स्वतन्त्रता को स्वीकार करते हुए ही उसे धर्माधिकार का पूर्ण उपदेश देता है, यथा—"इन्ना हदैना हुस्सबील इम्मा शाकेरँव इम्मा कफ़ूरा" क़ुरान २६।१६ (अर्थात्—हमने मनुष्य को स्त्री पुरुष के मिले बीज से उत्पन्न कर उसे देखने तथा सुनने योग्य बना दिया, पुनः) हमने उसे (धर्म का) सीधा मार्ग भी दिखा दिया, अब उसे अधिकार है कि चाहे वह कृतज्ञता पूर्ण हमारा अनुग्रह माने चाहे अवहेलना पूर्वक हमारा खुला अस्वीकार करे।

अनुमोदन—अब आप इस उक्त स्वतन्त्रता का अनुमोदन क़ुरान ११/१५ के निम्न स्थल में और देखें "वलौ शाऽ" से "ला युऽमेनून" पर्यन्त।

अर्थात्—"यदि ईश्वर चाहता तो भू भाग के समस्त लोग ईमान ले आते, हे मुहम्मद! क्या तू लोगों को अतर्कित ही विवश करेगा? कि वे अवश्य ही ईमान ले आयें? सावधान! प्रभु की आज्ञा विना कोई भी ऐसा नहीं कर सकता, और जो बुद्धि पूर्वक कर्म नहीं करते उन पर अवश्य ही प्रभु अपवित्रता को फेंक मारेंगे, हे मुहम्मद! लोगों से कह दो कि देखो द्यो तथा पृथिवी में क्या है। (परन्तु) यह भय उत्पादक चिन्ह उन लोगों के लिये कुछ लाभ कारी सिद्ध नहीं हो सकत जो

प्रभु पर विश्वास नहीं रखते"। इससे आप को मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अच्छा बोध हो सकता है। इस का समर्थन आप .कुरान ३।२ में "लाइक्रा:" से "समीउन्न अ़लीम्" पर्यन्त देख सकते हैं।

अर्थात्—धर्म के विषयों में अब बलात्कार नहीं, कारण सुपथ तथा कुपथ ये दोनों ही स्पष्ट रूप से पृथक २ प्रकट हो चुके हैं। अब जिस पुरुष ने शैतान की अवहेलना पूर्वक प्रभु को स्वीकार कर लिया है मानो उसने बहुत ही पुष्ट कड़े को थाम लिया जिसका टूटना सम्भव ही नहीं, प्रभु इस बात को अच्छी तरह सुनने तथा जानने वाले हैं।

इन सब आयतों का बोधयुक्त तात्पर्य यह हुआ कि इस्लाम धर्मानुसार व्यक्तिगत सब मनुष्य स्वतंत्र हैं।

निष्कर्ष रूप सार—अब इन सब के साथ २ आप .कुरान ३०।१३ की निम्न आयतों को और मिला लें "फ़ज़क्किर" से "हि़साबहुम्" पर्यन्त—

इन में प्रभु यह आज्ञा करते हैं कि—हे मुह़म्मद ! तुम्हारा काम केवल उन्हें समझाने का है सो तुम उन्हें समझाते रहो, तुम उन पर कोई गुमाशत: नहीं हो, फिर जो उस आज्ञा से विमुख हो अथवा जान बूझ कर उसकी अवज्ञा करेगा उसे हम न्याय के दिन भारी कष्ट देंगे, हेतु उन्हें हमारी ही ओर लौट कर आना है और हम निश्चय ही उनका पूरा २ हि़साब (लेखा) लेंगे।

इन ऊपर युक्त सब आयतों का निष्कर्ष रूप सार यही निकला कि इस्लाम धर्म में प्रत्येक स्त्री पुरुष को उन की जन्म सिद्ध स्वतन्त्रता प्राप्त है।

राजनैतिक दासता तथा इस्लाम—दास दासियों का नाना विधि वर्णन, उनके संग न्यायपूर्वक व्यवहार करना, उन्हें दास दासी न कह कर "मेरा बच्चा" तथा "मेरी बच्ची" कहना, जैसा स्वयं खाये, पहिरे वैसा ही उन्हें भी खिलाये, पिलाये, उढ़ाये, पहिराये, उन्हें कटु बचन सहित भारी दण्ड न देना, यथा शक्ति उनकी स्वतन्त्रता के लिये पूरा उद्योग करना, धर्म विहित दण्डों में भी उन्हें हल्के दण्ड देना इत्यादि विषय सिद्ध करते हैं कि इस्लाम में दासता का अस्तित्व कारणवश स्वीकार है परन्तु यह दासता कहाँ तक धर्म विहित है ? इसे बहुत ही कम लोग जानते हैं।

यह दासता समयोचित युद्ध की आवश्यकतानुसार स्वीकार की गई थी अन्यथा विधान रूप से श्री .कुरान की किसी "नस्से. सरीह़" (अर्थात् विधि रूपेण किसी प्रत्यक्ष श्रुति) से सिद्ध नहीं !

यही दासता .कुरान तथा विशुद्ध उक्तियों के प्रकाश में युद्धातिरिक्त ह़राम अर्थात्

नितान्त निषिद्ध है। इसे प्रायः इस्लाम के सभी मर्मज्ञ अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये इस्लाम धर्म इस दासता को कारण वश मानता है।

.कुरान २६।५ से २६।८ पर्यन्त में मुस्लिम, अमुस्लिम दो दलों का वर्णन आता है, जहाँ मुस्लिम को सत्य पथी तथा अमुस्लिम को असत्य पथी कह कर दोनों के निज कर्मों का पृथक २ विरोध दिखाया है। मुस्लिम पर यह भार है कि वह विशुद्ध ईश भक्ति का पूर्ण प्रचारक तथा यथाशक्ति इस्लामी नियमानुसार उसका योग्य अनुयाई हो। तथा उसके विरोधी अमुस्लिम दल का यह स्वभाव प्रकट किया है कि वह प्रभु के नकार सहित मुस्लिम को उसके विशुद्ध मार्ग से रोकने वाला है।

यह "मुहम्मद" नामक सूरत जिससे उपरोक्त आयतें दी गई हैं, मदनी है और प्रभु प्रिय श्री मुहम्मद मक्कः से निकाले जाकर पहले मदीनः आये, और यहीं से मुस्लिम अमुस्लिम युद्धों का आरम्भ हुआ। इस सूरत के अपने उपस्थित प्रकरण से भी यही जाना जाता है कि अमुस्लिम दल मुस्लिम दल को इस के पूर्व भी उसके प्रभु मार्ग से हठात रोकता रहा है। चुनाँचि इस प्रकरण की पहिली आयत के अपने शब्द इस प्रकार हैं।

"अल्लज़ीन कफ़रू व सद्दू अन् सबीलिल्लाहे" .कुरान २६/५

अर्थात्—वे लोग जिन्हों ने स्वयं प्रभु का नकार किया तथा अन्य लोगों को हठात उसके मार्ग से रोका।

इसके उपरान्त उन से सुरक्षित रहने के लिये कुछ उपयोगी आदेशों का वर्णन कर मुस्लिम समूह को सचेत किया कि यदि वे तुम से भिड़ जायें तो फिर तुम्हें उन के प्रति क्या कुछ करना चाहिये ? इत्यादि······।

(यही स्थल विशेष रूप से आप के समझने योग्य है, यदि इसे आप समझ गये तो उपस्थित नाम मात्र की इस्लामी दासता को आप अवश्य ही प्राचीन दासताओं से कहीं भिन्न स्वीकार करेंगे, अब इस विषय सम्बन्धी श्री .कुरान के अपने शब्दों को आप यहाँ देखें।)

"फ़इज़ा" से "औज़ारहा" पर्यन्त .कुरान २६/५।

अर्थात्—हे मुस्लिम दल के लोगो ! जब तुम प्रभु नकारी दल से भिड़ जाओ तो उन्हें इतना मारो कि वे पुनः तुम से लड़ने का कभी साहस न करें, उनकी मुशकें कस लो, इस के उपरान्त यदि चाहो तो उन्हें कुछ लेकर छोड़ दो अथवा यूं ही बिना लिये भी (उपकार दृष्टि से) जाने दो (ये दोनों बातें इस्लामी दल पति के अपने अधिकार में हैं और इस इतने कड़े युद्ध का उद्देश्य यह है कि) शत्रु आगे को शस्त्र न उठा सके, अर्थात्—ऐसी अद्भुत वीरता से लड़ो कि यह चालु युद्धाग्नि सदा के लिये समाप्त हो जावे।

इस स्थल पर अधिक से अधिक यह समझा जा सकता है कि विजयी दल के लोग पराजित दल की मुशकें बांध कर उन्हें कारागार में डाल दें।

इस्लामी सेना के दलपति अपने अधिकारानुसार यदि चाहें तो इन पराजित लोगों को दास बना सकते हैं, और चाहें तो कुछ बदला लेकर अथवा बिना कुछ लिये दिये ही छोड़ भी सकते हैं। इस प्रकार राजनैतिक दृष्टि से दास उन विजयी योद्धाओं के "अपने हाथों की कमाई" समझी जाती है। बस सिद्ध हुआ कि उपस्थित इस्लाम की यह दासता केवल युद्धोत्पन्न है, इसके अतिरिक्त मनुष्य जाति को दास बनाने अथवा उसके क्रय-विक्रय का इस्लाम में कोई विधान नहीं।

सन्देह निवारण—सम्प्रति यहाँ साधारण बुद्धि पुरुष को यह सन्देह हो सकता है कि इस्लाम मूलतः भयङ्कर युद्धों ही की आज्ञा देता है अतः इसी भित्यानुसार जो लोग यह कहते हैं कि इस्लाम असि सिद्ध, असि हेति पुरुषों द्वारा ही प्रचारित हुआ है, सो ठीक है। इस भूल पूर्वक सन्देह के निवारणार्थ हम उक्त युद्ध विषयक उसकी कतिपय प्रमुख आज्ञाओं को यहाँ उपस्थित करते हैं, आशा है आप उन्हें ध्यानपूर्वक मनन करेंगे।

१—लड़ने वालों से लड़ो—यह बात आप पूर्व ही जान चुके हैं कि इस्लाम आक्रमण-कारी नहीं अपितु अपने ऊपर द्वेषवश किये गये आक्रमणों का उचित उत्तर देता है। इसी बात को सम्मुख रखते हुए श्री .कुरान २/२८ में यह पहली आज्ञा देखो "व क़ातेलू" से "मु.ऽतदीन" पर्यन्त।

अर्थात्—हे मुस्लिम दल के लोगो! तुम प्रभु मार्ग में उन लोगों को मारो जो तुम्हें मारते हैं और तुम हमारी मर्यादित सीमा से आगे मत बढ़ो क्योंकि ऐसा करने वालों को प्रभु नहीं चाहते।

देखिये यहाँ प्रभु सीमा के भीतर रहकर ही न्यायपूर्वक अपने मारने वालों को मारने की आज्ञा दी है।

२—युद्धाज्ञा का कारण—पुनः इस बात को भी देखें कि अन्ततः प्रभु ने ऐसे युद्धों की आज्ञा क्यों दी?

और जो लोग उनके सम्मुख आये वे कौन थे? तथा उन्होंने इन युद्धों के पूर्व मुस्लिम दल के सङ्ग क्या कुछ नहीं किया? देखो श्री .कुरान १७/१३ "ओज़ेन" से "ओमूर" पर्यन्त।

अर्थात्—युद्ध की आज्ञा उन लोगों को दी जाती है जिनसे युद्ध चालु है, हेतु ये अत्याचार पीड़ित (मजलूम) हैं, निश्चित प्रभु इनकी सहायता की पूरी शक्ति रखते हैं। ये वे लोग हैं जिन्हें इनके घरों से इसलिये निकाल दिया गया है कि वे कहते थे हमारा परिपालक प्रभु (अल्लाह) है, यदि लड़ने हारों को प्रभु एक दूसरे के द्वारा न रोकते तो उपस्थित ई.साई,

यहूदी, मुस्लिम लोगों के समस्त भक्ति स्थल ढहा दिये जाते, जिनमें (आजकल) बाहुल्य रूप से प्रभु चर्चा की जाती है। प्रभु अवश्य ही उनकी सहायता करेंगे जो उसकी सहायता करते हैं। निःसन्देह प्रभु शक्तिशाली बल वाले हैं, ये वे लोग हैं कि यदि हम उन्हें भूमण्डल में शक्तिशाली करदें तो ये अवश्य ही चत्वारिंशतांश दानपूर्वक वन्दनाओं को स्थिर रखेंगे, भद्रतापूर्वक शुभ कृत्यों की आज्ञा देंगे, तथा जन साधारण को अभद्रतायुक्त निन्दित कार्यों से यथाशक्ति रोकने की चेष्टा करेंगे, शेष व्यवहारिक परिणाम तो हमारे अपने ही हाथ हैं।

३—यदि वे झुकें तो तुम भी झुक जाओ—श्री .कुरान १०/५ में वर्णित है कि—यदि नास्तिक दल के लोग शान्ति की ओर झुकें तो तुम भी (उस शान्ति की ओर) झुक जाओ और (ऐसी सन्धि में) प्रभु पर भरोसा रखो, कारण वह निश्चय ही सुनने, जानने वाला है। फिर यदि इस सन्धि द्वारा वे तुम्हें धोखा भी दें तो उसकी किञ्चित चिन्ता न करो, हेतु उसी ने पूर्व भी तुम्हें अपनी निज सहायता सहित विश्वासियों द्वारा शक्ति प्रदान की अतः उचित यही है कि तुम सोलहों आना उसी के हो रहो। देखो "व इन् जनहू" से "मुऽमैनीन" पर्यन्त।

मित्रो! इन तीन स्पष्टतम् उदाहरणों के अपने इस सत्यतायुक्त प्रकाश में अब आप उस ऊपरयुक्त सन्देह को देखें! पुनः आप ही न्यायपूर्वक इसका उचित निर्णय करें कि क्या वर्णित स्थलों की उपस्थिति में उक्त सन्देह लागु हो सकता है? वा नहीं?

पाठक! पहले उदाहरण में आप यह जान चुके हैं कि .कुरान ने मुस्लिम लोगों को उन से लड़ने की आज्ञा दी जो पहले उन से लड़ते थे, दूसरे में इसे स्पष्ट किया कि युद्ध की आज्ञा उन्हीं लोगों के प्रति है जिन से युद्ध चालु है, पुनः चालु युद्ध में मुस्लिम अत्याचार पीड़ित (मज़्लूम) हैं, यह भी स्फुट रूप से दिखा दिया गया है। फिर उन्हें अपने शत्रुओं द्वारा घर-बार, बन्धु-बान्धव, देश तथा प्रिय सम्पदाओं को इसलिये छोड़ना पड़ा कि वे केवल जगत नियन्ता प्रभु ही को अपना परिपालक जानते व मानते थे। तीसरे में इसे विस्पष्ट कर दिया गया है कि शत्रु यदि धोखा से भी शान्ति की इच्छा करें तो तुम इस भयङ्कर चालु युद्ध को समाप्त कर उनकी निज इच्छानुसार सन्धि करलो। इन अनेक युक्तियुक्त सतथ्य पूर्ण हेतुओं की विद्यमानता में कौन बुद्धिमान् न्यायपूर्वक यह कहने का साहस कर सकता है कि इस्लाम धर्म केवल आक्रमणकारी मुस्लिमों द्वारा ही प्रचारित हुआ अथवा दया धर्म रहित नाम मात्र की असि वाहिनी का ही परिणाम है?

पुनरपि एक दृष्टि—सम्प्रति इन्हीं उदाहरणों पर आप एक दृष्टि और डालें और इसे देखें कि इन्हीं उदाहरणों में इन युद्धों का मूल कारण तथा उनका उद्देश्य क्या है?

पहले उदाहरण में अपने मारने वालों को मारो, ऐसा आदेश हुआ है। परन्तु इसके साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सावधान! इस मार में प्रभु निर्धारित सीमा के

बाहिर मत जाना, हेतु ऐसा करने वालों को प्रभु नहीं चाहते। इस से स्पष्ट हुआ कि मुस्लिम युद्ध का उद्देश प्रभु सीमा के भीतर रहकर युद्ध द्वारा उसका निज प्रेम प्राप्त करना ही है। पुनः साधारण शब्दों में इसे प्रतिकार भी कह सकते हैं। अर्थात्—मारने वालों ही को मारो, अन्य को नहीं।

फिर दूसरे उदाहरण में जहाँ मुस्लिम दल को अत्याचार पीड़ित (मज़लूम) स्वीकार कर उनके नाना कष्टों का उल्लेख किया है वहीं उनके मुख्य विरोध का हेतु यह दिखाया है कि वे केवल अपने प्रभु ही को परिपालक मानते थे, इससे मुस्लिम दल की आस्तिकता तथा अमुस्लिम विरोधी दल की नास्तिकता प्रमाणित होती है। मुस्लिम पक्ष स्वयं विधि पूर्वक प्रभु भक्ति करना, आस्तिक मात्र की रक्षा, प्रभु चर्चा के मुख्य स्थलों की वृद्धि सहित रक्षा, जन साधारण को प्रभु नियमानुसार चलाना इत्यादि भद्रतापूर्वक शुभ कृत्यों का पूर्ण प्रचार था। विपक्ष दल इसका ठीक उलट चाहता था, इसी लिये अनुकूल मुस्लिम को प्रभु ने अपनी प्रमुख सहायता से न्यायपूर्वक युद्ध की आज्ञा दी तथा इन युद्धों द्वारा शत्रु दल के आक्रमण कारी वेगों को विफल कर उसने समस्त विशुद्ध पूजा स्थलों की उचित रक्षा करा ली, अन्यथा वे सब ढहा दिये जाते जैसा कि विपरीत पक्ष का अपना मुख्य उद्देश्य था।

तीसरे उदाहरण में इसे बिलकुल ही स्पष्ट कर दिया गया है, कि बस तुम हम पर ही भरोसा रखो, यदि वे झूठ मूठ भी शान्ति की ओर झुकें तो तुम पूर्ण रूप से शान्ति हो जाओ अर्थात् निर्वैर भाव युद्ध को समाप्त कर उनकी इच्छानुसार उनसे सन्धि करलो।

परन्तु यदि वे तुम्हारे ऐसा करने पर भी पुनः तुम से लड़ें तो तुम भी उनसे भिड़ जाओ, इसी भाव से उक्त आयत के पूर्व भाग में इन्हें सशस्त्र सैन्य सहित सचेत रहने की सुबोध आज्ञा दी है—यथा—"वअ.इदू" से "अदुव्व कुम्" पर्यन्त .कुरान १०।४।

अर्थात्—हे मुस्लिम दल के लोगो! तुम अपने तथा प्रभु आज्ञा विरोधी शत्रु दल पर धाक बिठाने के निमित्त यथाशक्ति अपने घुड़ सवारों सहित सैन्य दल बल को प्रस्तुत रखो, इत्यादि।

इस्लाम में प्रायः जितने भी युद्ध हुए वे सब के सब न्यायपूर्वक संसार की स्थिर शान्ति तथा मनुष्यमात्र के अपूर्व कल्याण हित ही के लिये हुए, और इन्हीं युद्धों में विजित दल के बन्धु-बान्धवों को मुस्लिम उनके भावी उपकार हित के निमित्त ही उन्हें दास दासी बनाते थे, एतदतिरिक्त मनुष्य जाति का दास दासी बनाना यह मूल इस्लाम धर्म में सुनिश्चित रूप से वर्जित है, ऐसा आप ठीक ही समझें।

सूक्तियों का अनुमोदन—ऊपर कथित प्रमाणों में इसे हम सिद्ध कर चुके हैं कि मनुष्य की स्वतन्त्रता उसका जन्म सिद्ध अधिकार है और युद्ध बन्दियों की दासता यह

साधारण, सकारण तथा केवल उनके भावी उपकार हित ही है। पुनः यह भी दिखा चुके हैं कि इसके अतिरिक्त मनुष्य को दास बनाना यह इस्लाम को स्वीकार नहीं।

अब इसी के अनुमोदनार्थ हम कुछ सूक्तियों के अपने मुख्य उद्धरण उपस्थित करते हैं। आशा है उन्हें आप मननपूर्वक स्वाध्याय करेंगे।

१—श्री उम्र—इस्लाम के प्रसिद्ध शासकों में श्री "उम्र" दूसरे शासक माने जाते हैं। आप के योग्य शासन काल में मिश्र देशीय एक क़िब्ती ने आपकी सेवा में उपस्थित हो एक मिश्र देशाधिपति मुस्लिम राज संचालक की कुछ त्रुटियों की चर्चा की, जिस में अधिकांश रूप से उन्हें अपनी दासता स्वीकार न थी। श्री उम्र महोदय ने उक्त पुरुष का निवेदन सुन मिश्र राज संचालक शासक श्री "उम्रु" को लिखा "हे उम्रु! तुमने मनुष्यों को कब से दास बना लिया है, हालांकि उनकी माताओं ने उन्हें स्वतंत्र उत्पन्न किया है ?"

२—श्री अबू हुरैरः—श्री अबू हुरैरः के कथनानुसार श्री मुहम्मद आज्ञा करते हैं कि—प्रभु आदेश है कि मैं प्रलय के दिन तीन पुरुषों से झगड़ा करूँगा तथा जिससे मैं झगड़ूंगा उसे पीस ही डालूँगा, (उन तीन में से) एक वह होगा जिस ने (पूर्व) मेरे नाम से प्रण किया पुनः उसी ने जान बूझ कर उसके विरुद्ध आचरण किया, (दूसरे) उस पुरुष से झगड़ूंगा जिसने एक श्रमी से श्रम पूर्वक काम लिया पर उसे उसके श्रमानुसार उसका पूरा फल न दिया (तीसरे) उस पुरुष से झगड़ा करूंगा जिसने स्वतन्त्र मनुष्य को ऐसा बना दिया हो कि मानो वह (उसका) दास ही है। (एक अन्य उक्ति में है कि प्रभु इस तीसरे पुरुष की कोई भक्ति भी स्वीकार न करेंगे।) देखो (बुख़ारी सहित सुनने अबी दावूद तथा इब्ने माजः तीन प्रसिद्ध उक्ति संग्रह)

.कुरान तथा दास विमुक्ति साधन—इसके उपरान्त हम .कुरान सहित कुछ सूक्तियों के ऐसे वाक्य उपस्थित करते हैं जिन से इस नाममात्र की दासता का भी अवसान सा हो जाता है।

देखो .कुरान १८/१० "वल्लज़ीन" से "रहीमुन्न" पर्यन्त।

अर्थात्—हे विश्वासियो! तुम्हारे दासों में से जो अपनी स्वतन्त्रता के लिये तुम से लिखा पढ़ी करना चाहें उन से तुम लिखा पढ़ी करलो, पुनः यदि तुम समझो कि उनके ऐसा करने में उनकी अधिक भलाई है तो अपने प्रभु प्रदत्त धन से भी उनकी पूर्ण सहायता करो।

इस का भाव यह है कि उपस्थित दास नाम धारी पुरुष यदि चाहे तो अपने स्वामी को कुछ धन देकर अपने आप को स्वयं भी ख़रीद सकता है, और उसकी इस स्वतन्त्रता में उसका स्वामी भी उसकी आर्थिक सहायता करे।

स्वामी की सहायता का स्वरूप इस प्रकार है कि वह उसे धन कमाने का अवसर दे,

अपने मूल्य धन की "ज़कात" भी उसी को देवे कि जिस से वह अपनी इस नाममात्र की दासता से शीघ्र ही विमुक्ति हो जावे।

इसके अतिरिक्त यदि स्वामी चाहे तो "हिब:" रूप से भी उसे अपना कुछ स्वतन्त्र धन प्रदान कर सकता है इत्यादि।

ख (१)—.कुरान तथा दासी—उक्त प्रकरण में जितने प्रमाण उपस्थित किये गये हैं वे प्राय: विधि निषेध की दृष्टि से दास दासी दोनों ही के लिये उपयुक्त हो सकते हैं।

फिर भी दास, दासी के मुख्य भेद प्रदर्शन अथवा आप सब की विशेष ज्ञानकारी के लिये इस (ख) नामक स्वतन्त्र भाग में भी कुछ ऐसी मुख्य बातों का समावेश अवश्य चाहता हूँ कि जिनसे सर्वसाधारण को सर्वदा ही उचित लाभ होता रहे।

बन्धुवर! इस्लाम में दास, दासी दो प्रकार के हैं। एक मुस्लिम, दूसरे अमुस्लिम। मुस्लिम दास दासी अवश्य ही मुस्लिमों से अधिक निकटतम हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। इन्हें इस्लामी विधानानुसार प्रायः समस्त धर्माधिकार मुस्लिमों के समान ही प्राप्त हैं। पुन: विहित नियमानुसार कर्म करने से पुण्य अधिक, तथा शास्ति रूपी दण्डों में पहले तो दया पूर्वक क्षमा, पुन: दण्ड होने पर भी सूक्ष्म अथवा अन्य स्वाधीन मुस्लिमों की अपेक्षा बहुत ही थोड़ा अर्थात् आधा ही है।

इस प्रकार इन्हें इस्लाम में अनेक प्रकार की बहुमूल्य सुविधायें प्राप्त हैं। परन्तु अमुस्लिम दास, दासी धर्म रहित होने के कारण अपने २ समूह से निकट तथा मुस्लिम पवित्रताओं से स्वयं ही दूर रहते हैं, जिसमें इस्लाम का अपना कोई दोष नहीं। यही कारण है कि इन्हें राजनैतिक सुविधाओं के अतिरिक्त धार्मिक सुविधाओं से कोई मुख्य लाभ प्राप्ति नहीं होती।

जिन लोगों ने इस्लाम के प्रारम्भिक इतिहास को न्यायपूर्वक दृष्टि से स्वाध्याय किया है वे इसे बलपूर्वक कह सकते हैं कि इस प्रकार की उदारता भी यह केवल इस्लाम ही का भाग है न कि अमुस्लिम सम्प्रदायों का, अमुस्लिम तो यथाशक्ति मुस्लिम दास दासियों को पाकर केवल मृत्यु अथवा नास्तिकता के मुख ही में देना उचित समझते थे, देखो "बलाल" आदि प्राचीन मुस्लिम दासों का रोमाञ्चकारी इस्लामी जीवन।

किन्तु इस्लाम अपने उन्नत शिखा पर पहुँच कर भी मुस्लिम, अमुस्लिम दोनों प्रकार के दासों पर वे कृपायें करता है जिन्हें अभी २ आप ऊपर पढ़ चुके हैं और शेष इन्हीं दास, दासियों के सङ्ग पृथक २ अथवा सम्मिलित रूप से और क्या कुछ किया है? इसे पुनरपि और देखें।

ख (२)—दासियों के सदाचार की रक्षा—ऊपरयुक्त प्रमाणों में हम श्री .क़ुरान १८।१० के अन्तर्गत एक आयत नोट कर आये हैं, उसका अर्थ अब आप यहाँ अवलोकन करें।

"और तुम्हारी दासियाँ जो सदाचार युक्त रहना चाहती हैं उन्हें तुम साधारण जीवन के लाभार्थ व्यभिचार के लिये विवश न करो।"

इस आयत से ज्ञात होता है कि इस्लामी दासियाँ यदि सदाचारपूर्वक जीवन निर्वाह करना चाहें तो उन्हें उनके इस शुभ व्रत से विचलित न करना चाहिये, यह इन इस्लामी दासियाँ के रक्षापूर्वक चरित्र सुधार का एक अद्वितीय उदाहरण है।

ख (३)—.क़ुरानातिरिक्त साक्षियाँ—अब इन्हीं दासियों के सम्बन्ध में मुख्य सूक्तियाँ व उक्तियाँ क्या कहती हैं ? उन्हें भी आप ध्यानपूर्वक अवलोकन करें।

क—श्री "अबू मूस: अशअ़री" द्वारा वर्णित एक उक्ति में कहा गया है कि आप ने आज्ञा की "जिस के पास कनीज़ (दासी) हो वह पहले उसे सुन्दरतापूर्वक पोसे, फिर उसे उच्च शिक्षा दे, इसके उपरान्त उसे स्वाधीनता प्रदान करे, इसके पश्चात् यदि वह स्वयं उससे विधिवत विवाह करे तो उसे दुगुना पुण्य लाभ होगा"।

ख—अपूर्व अनुमोदन—"बुख़ारी" में है कि जब श्री "अबू हुरैर: ने इस उक्ति को वर्णन किया कि "सा़लेह." नामक "दास" के लिये दो पुण्य हैं" तो कहने लगे, सौगन्द उस प्रभु की जिसके हाथ में मेरी जान है, यदि "जिहाद" (नास्तिकों से युद्ध), "ह़ज्ज" (नियत समय कऽब: की प्रदक्षिणा) तथा निज "माता की भक्तिपूर्वक सेवा" का विचार न होता, तो मैं "दास" बन कर मरना अवश्य ही स्वीकार करता"।

आशा है प्रस्तुत भारत के अनुभवशील इस्लाम प्रचारक तथा उसके महत् उपकार को उपयोगी समझने वाले सज्जन हमारे उक्त कथनों की ओर विशेष ध्यान देकर भारतोद्धार में अरबी वीरों से कदापि पीछे न रहेंगे।

इति—पहला प्रकरण

श्री मुह़म्मद नासिरुद्दीन अह़्मद द्वारा रचित।

---

patience and tolerance and advised his friends to remain absolutely non-violent and ultimately chose to forsake his land of birth and migrate to a distant place with all his followers. But evil ones would not give him any rest, even then, and started a war of vendetta to exterminate him and all the peaceful followers of Islam. At this stage, finding no other way left to him, the prophet most grudgingly permitted his people to fight in self-defence but at the same time repeatedly warned them never to be aggresive. Where can one find a better example of practical demonstration of peace and non-violence than that shown by Mohammed the benevolent ?

The teachings and the life of the Prophet clearly show that he was a great reformer and was intently desirous of seeing the moral tone of the world improved. There was no confusion or mysticism in his teachings and he had put the basic moral factors in such clear and simple words that every one could understand and follow them His ideal was to win evil with goodness and the cruelty and selfishness with love and selflessness. He clearly stated that god had sent several prophets at different times and at different places, but the people having lost the spirit of the teachings of their prophets had gone astray from the path of God and had fallen into vicious ways of superstition and evil. The Prophet had a great respect for the previous teachers and wanted people to learn afresh the real spirit of their teachings. Islam was a brotherhood of good men and anyone professing a firm belief in the following seven high principles of morality could join it :—

1. There is only one God, who is the creator of the universe and people should owe allegience to Him alone, there being no one else to share His authority–and the only way to please Him is to do good to others and obey his laws faithfully,

2. People should always remember God and offer prayers (Namaz) to him five times in 24 hours,

3. To purify their body and mind people should observe 30 day's fast (Roza) during the month of Ramzan every year,

4. Once, every year, people should offer in sacrifice some portion of their live stock, as that formed the main portion of their wealth in the name of God (Kurbani) and feed the poor with that,

5. To remain firm their belief people should own Mohammad as the true and the last prophet and should have complete faith in him,

6. Being the members of one universal brotherhood it is binding on every one to give away a portion of his daily earning in charity,

7. People should take a vow in the name of God never to commit

robbery, theft, or adultry and should not take any kind of intoxicant. especially wine, Usury, playing with stakes were strictly forbidden.

The prophet's teachings were so good and his life so pure and benevolent that they caught the imagination of the people and Islam spread like wild fire over a vast territory. Innumerable tribesmen and great empires joined Islam, of their own accord and the people became lawabiding and peaceloving. For a long time, after the demise of the Prophet the Islamic world flourished and became renowned for knowledge, Industries and Science. Great theoligians of Egypt Greece, Rome and other places of Europe and Asia used to flock to the Great University at Baghdad and used to hold free discussions on Theology among themselves. Islamic culture was looked upon with respect and was considered as the torch bearer of civilisation. Then came the waves of Tartar and Mongol invasions over the Islamic world, which had attracted those savage people, on account of its wealth and the Islamic culture was totally destroyed and the great cities like Baghdad, Damascus and others were completely ruined. Their spirit of Islam was forgotten and the later Mohammaden conquerors who had gained material powers commenced to ravage the neighbouring countries with sword and bloodshed. Their use of violence in converting people in the fair name of Islam brought to the glorious teachings of the Prophet hate, mistrust and fear. I am sure the book - Rahamatullil-Almin will help the non-muslims to appreciate the goodness of Islam and they will understand that the Prophet and his teachings had no responsibility for the misdeeds of the ignorant followers. Islam was not meant to be spread by sword and violence and the most of its success was achieved through love, sympathy and high tone of morality. To the muslims this book is as necessary as the very breath of their nostril for it teaches them the real spirit of the Islam and helps them to practise it in life. May God give success to the publishers of this book by bringing human beings closer to each other - Amen.

Civil Lines, Kanpur }

Dr. S. N. Mukerji

श्री डा० मुकर्जी ने जिस पुस्तक को लेते हुये इस्लाम के सम्बन्ध में अपने उच्च तथा प्रशंसनीय विचार प्रकट किये हैं वह पैग़म्बर-इस्लाम की जीवनी पर एक उच्च-कोटि के प्रमाणिक उर्दू ग्रन्थ "रह्मतुल्लिल् आलमीन" का हिन्दी अनुवाद है। इस पुस्तक का मूल्य ४) है। जो सज्जन समूल्य लेने की सामर्थ्य रखते हों वे समूल्य मँगवाने की कृपा करें। जिसमें कि इसी पुस्तक का दूसरा भाग छपवाने में सुविधा हो और जो बिना मूल्य प्राप्त करना चाहें वे भी निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें।

मु० अब्दुल् हय्यी

प्रधान मंत्री—सेन्ट्रल जमईय्यते तब्लीग़ुल इस्लाम, ९८/७२, नाज़िर बाग़, कानपुर।

सिर्फ़ टाइटिल माडर्न प्रेस, कानपुर में मुद्रित।